माता सहजो बाई - महान श्री कृष्ण भक्त

डॉ यतेंद्र शर्मा

श्री राम कथा संस्थान पर्थ

कार्यालय: ३५ मायना रिट्रीट, हिलरीज, पर्थ, ऑस्ट्रेलिया – ६०२५
वेबसाइट: https://shriramkatha.org
ई-मेल: srkperth@outlook.com
टेलीफोन: +६१ (०८) ९४०१ १५४३

श्री राम कथा संस्थान पर्थ उद्देश्य

- श्री राम कथा संस्थान भगवान् स्वामी श्री रामानंद जी महाराज (१४वीं शताब्दी) की शिक्षाओं पर आधारित एक सनातन वैष्णव धार्मिक संस्था है।
- श्री संस्थान का सिद्धांत धर्म, जाति, लिंग एवं नैतिक पृष्ठभूमि के आधार पर भेदभाव रहित है। 'हरि को भजे सो हरि को होई' संस्थान का मूल मन्त्र है।
- श्री संस्थान का मानना है कि शुद्ध हृदय एवं निःस्वार्थ भाव भक्ति ईश्वर को अति प्रिय है। सभी प्रभु-भक्त एक दूसरे के भाई बहन हैं।
- ब्रह्म मनोभाव: भगवान् श्री राम, माता सीता एवं उनके विविध अवतार ही सर्वोच्च ब्रह्म हैं। वह सर्व-व्याप्त एवं विश्व के सरंक्षक हैं।
- आत्मा मनोभाव: आत्मा का अस्तित्व सर्वोच्च ब्रह्म के परमानंद पर निर्भर है। आत्मा को सर्वोच्च ब्रह्म ही निर्देशित एवं प्रबुद्ध करते हैं। श्री राम, माता सीता एवं उनके अवतार ही जीवन का अंतिम उद्देश्य मोक्ष दिलाने में समर्थ हैं।
- माया मनोभाव: माया प्रकृति के तीन गुण - सत, रज और तमस, के प्रभाव से प्राकट्य होती है। माया को सर्वोच्च ब्रह्म ही नियंत्रित करने में समर्थ हैं। सर्वोच्च ब्रह्म पर ध्यान केंद्र करने से माया का विनाश होता है और जन्म-मृत्यु के चक्र से छुटकारा मिल मोक्ष की प्राप्ति होती है।
- श्री संस्थान इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निरंतर सनातन धार्मिक पत्रिकाएं, पुस्तकें, पुस्तिकाएं, काव्य ग्रन्थ आदि की रचनाएं एवं प्रकाशन करती है। साथ ही, समय समय पर श्री राम एवं अन्य धार्मिक कथाओं के संयोजन का भी प्रयास करती रहती है।

क्रमावली

सहजो बाई जन्म.....4
सहजो बाई बचपन एवं गुरु दीक्षा.....14
गुरुदेव - संत शिरोमणी श्री चरण दास जी.....22
संत चरण दास शिष्या सहजो बाई.....32
सहज प्रकाश - एक झलक.....46
भगवान् कृष्ण दर्शन एवं समाधि.....54

सहजो बाई जन्म

माता सहजो बाई के पिता साहूकार श्री हरि प्रसाद जी और उनकी माता श्रीमती अनूपी देवी थीं। मूलतः वह राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र के रहने वाले थे, परन्तु जीविका हेतु दिल्ली के पास एक नगर परीक्षितपुर में आ बसे थे। पूरे उत्तर भारत में सूखे मेवाओं के वह एक छत्र व्यापारी थे। माता लक्ष्मी का वैभवतापूर्वक निवास था। दानीओं में तो उनकी तुलना दानवीर कर्ण से की जाती थी। उन्होंने व्रत ले रक्खा था कि अपने गृह के आस पास पांच मील के क्षेत्र में किसी को भूखा नहीं सोने देंगे।

अट्ठारवीं सदी के प्रारम्भ का समय था। अभाग्य से इस समय राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र में, जहां के साहूकार श्री हरि प्रसाद जी मूलतः निवासी थे, भीषण अकाल की स्तिथि उत्पन्न हो गई थी। कैसा दुखदायी और भयानक समय था, यह सोचकर आज भी उनकी रूह काँप जाती थी। लोग भूख से मर रहे थे। कहीं भी खाने-पीने की वस्तुएं उपलब्ध नहीं थीं। लोग आश्रय की तलाश में यहां वहां भटक रहे थे, लेकिन न उन्हें रहने की जगह मिलती न कुछ खाने को। कूड़ेदानों को ही तलासते रहते कि संभवतः वहां कुछ तो पेट भरने के लिए मिल जाय, लेकिन वहां भी उन्हें कुत्ते-बिल्लियों से संघर्ष ही करना पड़ता था। जहां तहाँ क्षेत्र कंकालों से भर गए थे।

साहूकार श्री हरि प्रसाद जी ने अपने क्षेत्र में राहत कर्मियों के एक छोटे से दल का संगठन किया, और पहुँच गए मारवाड़ क्षेत्र। अपने साथियों के साथ वह मारवाड़ क्षेत्र के आस पास सभी गाँव में जाकर सभी निर्धन लोगों को खाद्य व्यवस्था प्रदान करने का यथा संभव प्रयास करने लगे। अपना स्वयं का खाद्य भण्डार भी अपने साथ इस अकाल ग्रस्त क्षेत्र में ले गए। उनका अपना अन्न भण्डार भी समाप्ति के कगार पर था फिर भी अपने और अपने परिवार का ध्यान ना रखते हुई उन्होंने निर्धनों की यथा संभव मदद की। कहते थे कि अगर साहूकार श्री हरि प्रसाद जी और उनकी राहत कर्मिओं की टोली ने यह सामयिक सहायता नहीं पहुंचाई होती तो सहस्रों की संख्या में लोग भूख से मर चुके होते। कहावत है कि हर अच्छा बुरा समय कट ही जाता है। वह बुरा समय भी किसी तरह कट गया।

ऐसे महादानी और परोपकारी पुरुष थे साहूकार श्री हरि प्रसाद जी। भगवान् ऐसे महापुरुषों को भी विषाद-ग्रस्त कर सकता है, अपनी साधारण बुद्धि से तो यह बाहर ही लगता है। प्रौढ़ावस्था में कदम रख चुके थे साहूकार श्री हरि प्रसाद जी, परन्तु भगवान् ने उन्हें कोई संतान नहीं दी थी। संतान विहीन होने का दुःख आज उन्हें बहुत सता था।

एक दिवस इसी दुविधा में सोच विचार करते हुए साहूकार श्री हरि प्रसाद जी बहुत उदासीन अवस्था में अपनी दुकान की गद्दी पर बैठे थे। वह गहन चिंतन में थे कि तभी एक स्वर सुनाई दिया। सेठ जी, सौ सेर काजू और सौ सेर अखरोट तुलवाइए। लेकिन सेठ जी तो न जाने किस दुनिया में खोए हुए थे। इस व्यापारी के शब्द सुने अनसुने हो गए। यह व्यापारी सेठ धन्ना सेठ जी साहूकार श्री हरि प्रसाद जी के पुराना मित्र थे। जाकर झकझोड़ दिया अपने मित्र को, 'क्या बात है मित्र? इतने उदासीन एवं गुमशुम हो किन गहन विचारों में खोये हुई हो?'

कहते हैं कि दुःखी अवस्था में अगर परम हितकारी मित्र के दो सहानुभूति भरे शब्द मिल जाएं तो दुःखी व्यक्ति को एक कांधा मिल जाता है, अपना दुःख-दर्द कहकर बोझ हल्का करने का। आज यही हुआ साहूकार श्री हरि प्रसाद जी के साथ। अपने परम मित्र सेठ धन्ना जी को सम्मुख देख एवं इस तरह सहानुभूति शब्द बोलते देख, साहूकार श्री हरि प्रसाद जी का रोना छूट गया और बोले, 'मित्र तुम तो जानते ही हो। माँ लक्ष्मी ने सब कुछ दिया, परन्तु संतान-विहीन रखा। मेरे ऐसे किन कर्मों का यह दंड मुझे माँ ने दिया है? इस जन्म में तो मैंने जहां तक मेरी स्मृति जाती है, ऐसा कोई अशुभ कार्य माँ को अप्रसन्न करने वाला नहीं किया। पिछले जन्म का मैं जानता नहीं। क्या कोई विधि है जिससे मुझे संतान मुख दिख सके?'

साहूकार श्री हरि प्रसाद के यह दुःख भरे वचन सुनकर सेठ धन्ना जी बोले, 'अवश्य मित्र। तुम संभवतः भूल गए हो कि तुम्हारे ममेरे भाई संत चरण दास जी एक सिद्ध पुरुष हैं। जाओ और उन्हें अपनी व्यथा सुनाओ। वह अवश्य ही तुम्हारा मार्ग दर्शन करेंगे।'

'हाँ मित्र, जानता हूँ, अवश्य जानता हूँ। परन्तु संत चरण दास जी एक महान वैरागी संत हैं। उन्हें इन सब सांसारिक वस्तुओं से कोई लेना देना नहीं है। उन्होंने तो यह सांसारिक मोह माया अल्पायु में ही छोड़ दी थी', साहूकार श्री हरि प्रसाद जी बोले।

"मित्र, संतों का ह्रदय तो अत्यंत दयावान और कृपालु होता है। उनका जीवन हम सांसारिक लोगों के मार्ग दर्शन के लिए ही समर्पित होता है। अब वह समस्या सांसारिक हो अथवा आध्यात्मिक, अवश्य ही उसका समाधान उनके पास होगा। मित्र, सकुचाओ नहीं और अपना ह्रदय संत के चरणों में रख दो', सेठ धन्ना जी बोले।

सेठ धन्ना जी की बात का साहूकार श्री हरि प्रसाद जी पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा और उन्होंने अपना मन मार्ग दर्शन हेतु अपने ममेरे भाई संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के आश्रम अपनी धर्म पत्नी श्रीमती अनूपी देवी के साथ दिल्ली जाने का बना लिया। एक दिन शुभ मुहूर्त देखकर वह अपनी धर्म-पत्नी श्री मति अनूपी देवी के साथ संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के आश्रम दिल्ली पहुँच गए।

जब उन्होंने संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के दिल्ली स्थित आश्रम में प्रवेश किया, तब वहां की भव्यता वह देखते ही रह गए। आश्रम में प्रवेश करने मात्र से ही उनका अशांत मन शांत हो गया।

आश्रम का प्राकृतिक वातावरण देखते ही बनता था। प्रतीत हुआ कि अवश्य ही ईश्वर ने समस्त प्राकृतिक सुंदरता का वरदान संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के आश्रम को ही दे दिया है। सुंदरता देखते देखते जैसे आँखे कभी थक ही नहीं रहीं थीं। संत के आश्रम में जैसे मानव और प्रकृति के बीच का रिश्ता ही समाप्त हो गया था। चिड़ियों का चहचहाना, यमुना नदी का तट, नदी की कुलकुलाहट का स्वर, वृक्ष, फूलों से सुगन्धित वनस्पति पौधे, और ऊपर से शिष्यों द्वारा धीमी धीमी मंत्रोचारण ध्वनि, बस देखते ही बनती थी।

आश्रम के द्वार पर पहुंचते ही संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के एक शिष्य ने साहूकार श्री हरि दास जी एवं उनकी पत्नी श्रीमती अनूपी देवी जी को पहचान

लिया। तुरंत दौड़ कर आया । चरण स्पर्श किए और बोला, 'काका, आपने अपने आने का कोई समाचार नहीं भेजा। सब ठीक है न।'

'हाँ पुत्र छीतरमल, सब कुशल मंगल है', बोले साहूकार श्री हरि दास जी इस शिष्य से। यह संत जी का शिष्य कोई और नहीं बल्कि उनका स्वयं का भतीजा ही था।

'संत जी कैसे हैं?' पूछा साहूकार श्री हरि दास जी ने।

'सब कुशल मंगल है। आप यात्रा से थके हुए हो, हाथ मुँह धो, थोड़ा अल्पाहार और विश्राम कर लो, फिर मैं आपको और काकी को संत जी के समक्ष ले चलूँगा। बहुत प्रसन्न होंगे आपको देखकर', प्रत्युत्तर दिया छीतरमल ने।

यात्रा की थकावट तो आश्रम के वातावरण ने तुरंत ही हर ली थी, फिर भी छीतरमल का हृदय रखने के लिए वह स्वयं एवं श्रीमती अनूपी देवी जी छीतरमल के साथ अतिथि आवासगृह चले गए। हाथ पैर धो बैठे ही थे कि छीतरमल ने फलों के टोकरे के साथ प्रवेश किया। साहूकार श्री हरि दास जी एवं श्रीमती अनूपी देवी ने फलाहार किया, और विश्राम हेतु चारपाई पर लेट गए। थकावट तो थी ही, फिर भोजन भी कर लिया था। बस प्रौढ़ शरीर अर्धसुप्त अवस्था में आ गया। निद्रा के आगोश में आते ही मधुर स्वप्नों ने उन्हें घेर लिया। देखा एक अत्यंत सुन्दर कन्या एक ब्रह्मचारिणी की वेशभूषा में उनसे कुछ कहना चाहती थी। 'क्या कह रही हो पुत्री? स्पष्ट शब्दों में कहो न, कुछ समझ नहीं आ रहा', बोले साहूकार श्री हरि प्रसाद जी।

'मैं तो कब से आपकी प्रतीक्षा कर रही थी, बाबा। आपने आने में इतनी देर क्यों लगा दी?', यह मधुर शब्द सुनाई दिए साहूकार श्री हरि प्रसाद जी को। भड़भड़ाहट में तुरंत आंखें खुल गईं। अपनी पत्नी श्रीमती अनूपी देवी जी को उन्होंने इस स्वप्न के बारे में बताया और इसे अत्यंत शुभ शगुन मानकर प्रतीक्षा करने लगे छीतरमल के आने की जो उन्हें संत जी से मिलवाये।

कुछ ही समय बाद देखा छीतरमल के साथ स्वयं संत जी ही उनकी ओर आ रहे थे। तुरंत दोनों पति-पत्नी खड़े हो गए, संत जी के स्वागत में। हृदय किया तुरंत उनके पैर छूएं, लेकिन यह क्या? संत जी उनके पैरों की ओर झुके और चरण स्पर्श किया साहूकार श्री हरि दास जी एवं श्रीमती अनूपी देवी का।

'भैया, भाभी, बहुत दिनों बाद दर्शन दिए। आशा है सब कुशल मंगल होगा,' संत जी के शब्द सुनाई दिए।

दोनों पत्नी-पत्नी, साहूकार श्री हरिदास जी एवं श्रीमती अनूपी देवी जी, किंकर्तव्यविमूढ़। उन्होंने तो कभी स्वप्न में भी यह नहीं सोचा था कि संत जी इस प्रेम से उनसे मिलकर उनके चरण स्पर्श करेंगे! कहाँ सिद्ध पुरुष संत शिरोमणी श्री चरण दास जी और कहाँ मैं एक साधारण पुरुष। हाँ, आयु में मैं अवश्य उनसे बड़ा हूँ, लेकिन सम्मान का हेतु आयु तो नहीं, परन्तु ज्ञान-युक्तता है । संत जी की इस विनम्रता से दोनों की आँखे नम हो गईं। रोने लगे और चिपट गए अपने भैया से।

'भैया, भाभी अभी आप थोड़ा विश्राम करो। सांय स्तुति के समय छीतरमल आपको मंदिर ले आएंगे, वहीं फिर मिलन होगा', कहकर चले गए संत जी।

प्रतिदिन प्रातः सांय श्री संत जी के दर्शन होते थे, बातें भी होतीं थी। आज साहूकार श्री हरि प्रसाद जी को संत जी के आश्रम में आए तीन दिन बीत गए। हिम्मत ही नहीं हो पा रही थी कि संत जी के समक्ष अपने हृदय की व्यथा खोल सकें। फिर संत जी तो सदैव शिष्यों और आगुन्तकों से घिरे रहते थे। कब और किस तरह से उनसे व्यक्तिगत रूप में मिलन हो, इसकी तो संभावना ही दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी। चलो आज छीतरमल से बातें करेंगे। वह अवश्य ही कोई तरीका बताएगा। वह यह सोच ही रहे थे कि उन्होंने छीतरमल को अपनी ओर आते देखा। बड़ी ही प्रसन्न मुद्रा में था। चरण स्पर्श किए काका काकी के, और कहा संत जी आश्रम के द्वार समीप यमुना तट पर आपकी प्रतीक्षा में हैं। जब आपको समय हो, वहीं आ जाना। हरि दास जी की आँखों से फिर आंसू निकल पड़े। कितना विनम्र

स्वभाव था संत जी का। जब मुझे समय हो तब मैं मिलने आ जाऊं, ऐसी विनम्रता। तुरंत चल दिए पत्नी सहित छीतरमल के साथ संत जी से मिलने।

साहूकार श्री हरि प्रसाद जी यमुना तट पर शांत मुद्रा में बैठे संत जी के समीप पहुंचे। फिर वही शिष्टाचार। संत जी उठे और साहूकार श्री हरि प्रसाद जी के चरण स्पर्श करने लगे। नहीं, यह तो घोर पाप है कि एक संत साधारण पुरुष के चरण छूए! तुरंत पकड़ लिया साहूकार श्री हरि प्रसाद जी ने संत जी को । न अपने और न ही पत्नी के चरण स्पर्श करने दिए। वहीं यमुना तट आसन पर सभी बैठ गए। धीमे धीमे स्वर में संत जी ने बोलना प्रारम्भ किया, 'भैया, भाभी, मीरा बाई स्वयं अवतार ले रहीं हैं आपके गृह में। बस वृंदावन जाकर बांके बिहारी का आशीर्वाद ले लो'।

साहूकार श्री हरि प्रसाद जी तो अपने हृदय में सोचे बैठे थे कि वह संत जी से संतान प्राप्ति के लिए प्रार्थना करेंगे। लेकिन उन्हें अन्तर्यामी संत जी के बारे में कुछ आभास नहीं था। अपनी मूर्खता पर क्रोध आने लगा। जीवन बिता दिया। प्रौढ़ अवस्था में प्रवेश कर लिया, फिर भी संत की महत्वा को नहीं समझ सके। संत तो अन्तर्यामी होते हैं। उनसे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। केवल मिलन एवं दृष्टि से ही वह मन की व्यथा समझ उसके समाधान का तुरंत आशीर्वाद दे देते हैं। साहूकार श्री हरि प्रसाद जी एवं श्रीमती अनूपी देवी जी के मुख से एक भी शब्द नहीं निकला। बस संत जी की ओर एक टक उसी प्रकार देखते रहे जैसे चकवा चन्द्रमा को देखता रहता है। फिर थोड़ी देर में संत जी के शब्दों ने उनका ध्यान तोड़ा।

'भैया, भाभी अब मुझे आज्ञा दें, मेरा चिंतन का समय प्रारम्भ हो गया है। आप जब तक चाहें आश्रम का आतिथ्य स्वीकार करें, और जब मन हो तब वृंदावन बांके बिहारी के दर्शनार्थ प्रस्थान करें,' इन प्रेम भरे संत जी के शब्दों को सुनकर भावाविहोर हो गए साहूकार श्री हरि प्रसाद जी। उन्होंने संत जी के कर कमलों को अपने हाथ में ले लिया और बोले, 'हे भाई, मुझे आज ही विदा करो। मैं बांके बिहारी जी के दर्शन के लिए अत्यंत व्याकुल हूँ।'

'जैसी आपकी इच्छा भैया भाभी', कहकर संत जी ने प्रेम दृष्टि से साहूकार श्री हरि प्रसाद जी एवं श्रीमती अनूपी देवी जी को देखा, और वह चले गए।

छीतरमल ने उनकी विदाई की। वृंदावन जाने का पूरा प्रबंध उसने किया।

साहूकार श्री हरि प्रसाद जी एवं श्रीमती अनूपी देवी जी वृंदावन पहुंचे। छीतरमल जी ने एक पत्र द्वारा श्री कृष्ण धर्मशाला के प्रबंधक को, जो संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के भक्त थे, साहूकार श्री हरि प्रसाद जी के बारे में अवगत कराया। स्वयं संत जी के भाई आज उनकी धर्मशाला में पधार रहे हैं, इस प्रसन्नता से उनका हृदय अति प्रफुल्लित हो उठा। प्रेम से स्वागत किया और उनके सुविधापूर्वक रहने की पूर्ण व्यवस्था की।

साहूकार श्री हरि प्रसाद जी बांके बिहारी की महिमा के बारे में सोचने लगे। उन्हें अपने पिता के शब्द याद आने लगे कि श्री बांके बिहारी जी का मंदिर किसी ने बनाया नहीं, अपितु बिहारी जी की यह प्रतिमा श्री स्वामी हरिदास जी के द्वारा संगीत साधना से प्रकट हुए थी। उनके पिताजी ने बताया था कि श्री बांके बिहारी जी की प्रतिमा कोई एक मूर्ती नहीं, परन्तु साक्षात श्री कृष्ण भगवान् एवं श्री माता राधा रानी की उपस्थिति है। प्रति दिन ना जाने कितने चमत्कार होते हैं यहां। उन्हें देखने के लिए सिर्फ नेत्र ही काफी नहीं है। उनके दर्शन के लिए प्रेम भाव भी होना चाहिए।

पिताश्री के शब्दों की उन्हें स्मृति आ गई, 'हे पुत्र, श्री बांके बिहारी जी का प्राकट्य बहुत ही अद्भुत था। श्री स्वामी हरिदास जी के भगवान् कृष्ण के प्रति प्रेम भाव का हृदय से समर्पण स्वीकार कर भगवान् कृष्ण स्वयं प्रगट हुए थे, माता राधा रानी के साथ।' पिताश्री के शब्द उनके कर्णों में गूंजने लगे।

'पुत्र, श्री स्वामी हरिदास जी कोई और नहीं बल्कि संगीत सम्राट तानसेन के गुरु ही थे। श्री स्वामी हरिदास जी का जन्म राधा अष्टमी के दिन हुआ था। वो ललिता सखी के अवतार थे । वही ललिता सखी जो राधा रानी की सखी थीं। उनको बचपन से ही ध्यान और ग्रंथों में रूचि अधिक थी। कृष्ण भगवान से अत्यंत स्नेह था। युवा

हरिदास जी सांसारिक सुख से दूर रहे और ध्यान पर केंद्रित हो गए। श्रीमति हरिमती जी के साथ समय से उनकी शादी तो अवश्य हुई पर वह बिलकुल ही अलग थे। उन्हें सांसारिक सुख से कोई मोह नहीं था। श्रीमति हरिमती जी इस को अल्प काल में ही समझ गईं कि उनका प्रेम प्रभु के प्रति अतुल्य है। धीरे धीरे समय बीता और वो दिन आ गया जब श्री स्वामी हरिदास जी वृन्दावन के लिए निकल पड़े। उस समय वृन्दावन एक घना जंगल ही था। उन्होंने अपने निवास के लिए एक निर्जन स्थान चुना, जिसे अब निधिवन के रूप में जाना जाता है। उन्हें संगीत का बड़ा शौक था। वह संगीत सम्राट थे। अपने संगीत को उन्होंने प्रभु को समर्पित कर रखा था। संगीत के साथ वह नित्य आनंद के साथ प्रभु की रास और बिहार का चित्रण करते रहते। साधना का उनका नियम भगवान की स्तुति में गीतों को लिखना और उन्हें अपने संगीत में बांधकर गाते रहना था। इससे उन्हें भगवान की निकटता की प्रसन्नता का आनंद अनुभव होता था। उन्होंने निर्वाण के प्रवेश द्वार के रूप में निधिवन में एक निर्जन और घने वन क्षेत्र कुंज को चुन लिया, और अधिकतर वहीं ध्यानावस्था में रहते थे। अनन्त आनंद के महासागर निधिवन में गायन, ध्यान और नाम संकीर्तन करते रहते थे। जब श्री स्वामी हरिदास जी संगीत साधना से बांके बिहारी जी को रिझाते थे तो उस निधिवन की हर एक डाल भक्ति रास में श्री राधा कृष्ण प्रेम में झूम उठती थी। पुरे निधिवन में एक अद्भुत प्रकाश फैला रहता था। भगवान् कृष्ण के श्री स्वामी हरिदास इतने दीवाने रहते थे और उनके रूपों का जिस प्रकार वर्णन करते थे, ऐसा लगता था कि स्वयं बांके बिहारी जी के उन्हें दर्शन हो रहे थे। अन्य साधारण पुरुष की आँखें एक प्रकाश के अतिरिक्त कुछ और नहीं देख पातीं थीं। तब लोगों ने उनसे विनती की कि हे प्रभु, हमें भी बांके बिहारी जी के दर्शन कराओ। उनकी करुण पुकार सुनकर और उन सब के ह्रदय की वेदना सुन स्वामी जी ने भगवान् से विनती की। हे प्रभु, जिस छठा का मैं दर्शन करता हूँ, उनका दर्शन सब करना चाहते हैं। हे भगवन्, कृपा करके आप प्रकट हो जाएं जिससे सभी आपका दर्शन कर सकें, और अपना जीवन सफल बना सकें। स्वामी हरिदास जी गाने लगे:

भाई री सहज जोरी प्रकट भई, जुरंग की गौर स्याम घन दामिनी जैसे ।
प्रथम था हुती अब हूं आगे हूं रहि था न टरि था तैसे ।।

अंग अंग की उजकाई सुघराई चतुराई सुंदरता ऐसे ।
श्री हरिदास के स्वामी श्यामा पुंज बिहारी सम वैसे वैसे ।।

भगवान् का हृदय तो माखन की तरह करुणा और दयामयी होता है, अतः स्वामी जी के निवेदन से कृष्ण और राधा रानी ने दर्शन देने की मति बना ली। लेकिन राधा रानी के प्रताप को सहन करना सामान्य लोग के सामर्थ्य में नहीं था। स्वामी जी ने प्रार्थना की, 'हे भगवन्, कृपा करके कुछ ऐसा कीजिये कि सामान्य पुरुष एवं नारी भी आपके दर्शन कर सकें।' तब राधा-कृष्ण दोनों एक हो गए। माँ राधा का प्रताप भगवान् कृष्ण ने अपने में समाहित कर लिया। बांके बिहारी जी के रूप में प्रकट हो गए। इसी कारण श्री बांके बिहारी जी का दर्शन करना राधा कृष्ण की जुगल जोड़ी के दर्शन करना है।'

आज साहूकार श्री हरि प्रसाद जी को इन्हीं दोनों भगवान् कृष्ण और माता राधा रानी के श्री बांके बिहारी के रूप में दर्शन होंगे, यह सोच उनका हृदय प्रसन्नता से भरा हुआ था।

आज सुबह दैनिक क्रिया से निवृत हो, स्नान आदि से पवित्र हो, दोनों पति-पत्नी बांके बिहारी मंदिर दर्शन के लिए गए। भगवान् कृष्ण की बांसुरी बजाते हुए काली मनमोहक प्रतिमा ने उन दोनों का मन मोह लिया। भवाविहोर हो गए पति-पत्नी। हे प्रभु, हमारी रक्षा करो, रक्षा करो, कहते हुए मंदिर के प्रांगण में ही बैठ गए। हृदय से 'हे गोविन्द, हे राधे' का स्वर निकल रहा था। उनके कवि हृदय से भजन की कुछ पंक्तियाँ फूट पड़ीं।

राधे कृष्णा राधे कृष्णा कृष्णा कृष्णा राधे राधे ।
राधे श्याम राधे श्यामा श्याम श्यामा राधे राधे ।।

अचानक साहूकार श्री हरि प्रसाद जी अवचेतन अवस्था में चले गए। वही सुन्दर बालिका जो संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के आश्रम में स्वप्न में आईं थीं, यहां भी उन्हें दिखाई देने लगीं। वही सुन्दर मूरत, वही शब्द,"मैं तो कब से आपकी प्रतीक्षा कर रही थी बाबा, आपने आने में इतनी देर क्यों लगा दी?" सुनाई दिए

साहूकार श्री हरि प्रसाद जी को। चेतन अवस्था में आने पर उन्होंने अपने आप को सम्हाला और पत्नी को लेकर भगवान् को प्रणाम कर मंदिर से बाहर निकल आए।

प्रभु एवं माँ के दर्शन कर तब वह अपने निवास स्थान परीक्षितपुर लौट आए।

संत शिरोमणी श्री चरण दास जी एवं बांके बिहारी के दर्शन किये लगभग एक वर्ष हो चुका था। आज विक्रम सम्वत १७८२ के आषाढ़ महीने की शुक्लपक्ष पूर्णिमा (२५ जुलाई १७२५) का शुभ दिन था। वैदिक हेमंत ऋतू अपने कदम पसारना चाहती थी। वर्षा ऋतू और उमस भरी अति आर्द्रता से स्वतन्त्रता मिलने लगी थी। बस अगले दिन से ही श्रावण मास प्रारम्भ होने वाला था। इसी समय अनूपी देवी को प्रसव पीड़ा होने लगी। घर की दाई को तुरंत बुलाया गया।

'कन्या का जन्म हुआ है, साहूकार श्री हरि प्रसाद जी', दाई के मधुर शब्दों ने दाई के जी का ध्यान भंग किया।

साहूकार श्री हरि प्रसाद जी को तो जैसे मन मनौती ही मिल गई। याद आने लगी वह स्वप्न की सुन्दर बालिका जो उन्होंने संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के आश्रम एवं बांके बिहारी मंदिर में देखी थी। आने लगे याद संत शिरोमणी जी के शब्द, 'मीरा बाई जैसी पुत्री आएंगी आपके गृह, भैया'। मन प्रफुल्लित हो गया। कोष खोल दिया सभी गरीबों के लिए, और हुआ मिठाईओं का वितरण प्रारम्भ।

आज कन्या के जन्म का ग्यारहवां दिन था। पुरोहित जी को बुलवाया गया, नाम संस्कार के लिए, और उन्होंने नाम रखा, 'सहजो'। 'सहजो' अर्थ कन्या, जो सरल, सुगम एवं स्वाभाव से अति दयावान हो।

सहजो बाई बचपन एवं गुरु दीक्षा

शनैः शनैः सहजो बड़ी होने लगीं। पिता साहूकार श्री हरि प्रसाद जी एवं माता श्रीमती अनूपी देवी, दोनों ही संत शिरोमणि श्री चरण दास जी को अपना गुरु मानते थे। संत शिरोमणि श्री चरण दास जी सहजो के जन्म पच्श्चात यदा कदा साहूकार श्री हरि प्रसाद जी एवं श्रीमती अनूपी देवी का आतिथ्य स्वीकार करने दिल्ली से परीक्षितपुर आते रहते थे। एक बार जब सहजो की आयु तीन वर्ष की रही होगी, संत जी का पावन पदार्पण साहूकार श्री हरि प्रसाद जी के गृह हुआ। संत जी ने दिव्य दृष्टि से तभी जान लिया कि यह बालिका भगवान् श्री कृष्ण की अनन्य भक्त होगी। संत जी ने इस छोटी सी आयु में सहजो को कुछ मन्त्र सिखाए। सहजो की प्रखर बुद्धि ने उन मन्त्रों को तुरंत कंठस्थ कर लिया। संत शिरोमणि जब भी साधना में लीन होते, सहजो उनके साथ बैठकर उनकी मुद्राओं को दोहराने लगतीं।

संत जी की कुछ ऐसी नैत्य क्रिया थी कि वह जब भी साधना करने बैठते तो अपने साथ लाई एक भगवान् कृष्ण की पत्थर की प्रतिमा को अपने सम्मुख रख लेते थे। तीन वर्षीय बालिका सहजो ने उनसे प्रश्न पूछा, 'चाचा जी, कृष्ण भगवान् की प्रतिमा को माँ तो मंदिर में रखती हैं, आप अपने साथ इन्हें लिए क्यों भ्रमण करते रहते हैं? जब भी आप साधना में लीन होते हैं तो इस प्रतिमा को क्यों सम्मुख रखते हैं?'

संत शिरोमणी चरणदास जी ने बालिका को अपनी गोद में उठा लिया और मधुर शब्दों में बोले, 'पुत्री, तुम्हें अवश्य अनुभव है कि तुम्हारे माता पिता सदैव तुम्हारी सुरक्षा के लिए खड़े रहते हैं। अब मेरे माता पिता तो भगवान् कृष्ण के समीप पहुँच गए। मेरी रक्षा कौन करेगा? यही कृष्ण भगवान् मूर्ति स्वरुप में मेरी सदैव रक्षा करते हैं। इसीलिए मैं सदा इन्हें अपने समीप रखता हूँ।'

भोली भाली बालिका सहजो संत जी के गूढ़ शब्दों का अर्थ तो नहीं समझ पाई, परन्तु तुरंत बोली, 'चाचा जी, आपके माता पिता क्यों नहीं हैं? वह आपका ध्यान क्यों नहीं रखते? मेरा आप उनसे मिलन कराईए ना। मैं उनसे अवश्य यह कहूंगी कि वह आपका ध्यान रखें, आपकी रक्षा करें। यह तो उनका कर्तव्य है ना।'

संत शिरोमणी चरण दास जी मुस्कुराए और प्रिय वचनों में बोले, 'प्रिय पुत्री, मेरे माता पिता अब इस दुनिया में जीवित नहीं हैं। वह प्रभु के पास जा चुके हैं। अब वह जब जीवित हैं ही नहीं तो मैं तुम्हारा मिलन उनसे कैसे करा सकता हूँ?'।

प्रखर बुद्धि की बालिका सहजो बाई ने इतनी सुलभता से संत जी को नहीं छोड़ा। फिर प्रश्न किया।

बालिका सहजो बोलीं, 'चाचा जी, उन्हें आपने भगवान् कृष्ण के पास जाने से क्यों नहीं रोका? क्यों नहीं कहा कि मेरी रक्षा कौन करेगा?'

अब संत शिरोमणि जी कुछ गंभीर हो गए और बोले, 'पुत्री, अभी तुम बहुत छोटी हो, संभवतः मेरे शब्दों का अर्थ न समझो। मृत्यु को कोई नहीं रोक सकता। जिस ने इस संसार में जन्म लिया है, उसे एक दिन जाना ही पड़ता है। अब वह कब और कैसे जाएगा, यह उसके कर्म निर्धारित करते हैं। मैं निःसहाय था। मैं कुछ नहीं कर सकता था।'

प्रत्युत्तर में फिर बालिका सहजो बोलीं, 'तो क्या चाचा जी, मेरे माता पिता भी एक दिन मुझे छोड़ कर चले जाएंगे?'

संत जी गंभीरता से बोले, 'हाँ पुत्री, ऐसा ही विधि का विधान है।'

बालिका सहजो भी तब गंभीर मुद्रा में आ गईं और बोलीं, 'तब फिर तो मुझे भी कृष्ण भगवान् की एक मूर्ति दीजिए ना चाचा जी। माता पिता के जाने के पश्चात मेरी रक्षा भी वही कर सकते हैं।'

संत शिरोमणी ने बालिका को अपनी गोदी से उतारा और बोले, 'अवश्य पुत्री। तुम मेरे ही बाल गोपाल को रख लो। इन्हें सदैव अपने साथ रखना। स्मरण रहे इन्हें प्रातः ही भूख लगती है, कुछ भोजन देना नहीं भूलना। मैं कृष्ण कन्हैया से प्रार्थना करूंगा कि वह सदैव तुम्हारी रक्षा करें।' यह कहकर उन्होंने बाल गोपाल ठाकुर जी को बालिका सहजो को सौंप दिया।

बालिका सहजो ने बाल गोपाल तो लिया, परन्तु उसे तुरंत स्मरण आया कि मैंने चाचा जी के बाल गोपाल तो ले लिए, अब उनकी रक्षा कौन करेगा? अतः वह फिर संत शिरोमणी संत जी जी से बोलीं, 'नहीं चाचा जी, मैं आपके बाल गोपाल नहीं ले सकती? अगर मैंने आपके बाल गोपाल ले लिए तो फिर आपकी रक्षा कौन करेगा?'

बालिका सहजो का इतना ही कहना था कि संत शिरोमणी ने मुस्कुराकर बाल ठाकुर जी को अपने हाथों में एक बार फिर से ले लिया। अपने गुरुदेव भगवान् सुकदेव का स्मरण किया, और तुरंत दो बाल गोपाल बन गए। एक बाल गोपाल बालिका सहजो को देते हुए बोले, 'लो पुत्री, भगवान् अपने दो रूपों में प्रगट हो गए। अब एक बाल गोपाल तुम्हारी रक्षा करेंगे, और दूसरे मेरी। अब तो तुम प्रसन्न हो ना?'

बालिका सहजो की प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं रहा। वह अपने इन बाल गोपाल के प्रेम में दीवानी हो गई। धैर्य, त्याग, समर्पण और लज्जा की प्रतिमूर्ति कन्या बन गई। तुरंत दौड़ कर माता श्रीमती अनूपी देवी के पास पहुँची और भगवान् श्री कृष्ण की प्रतिमा दिखाते हुई बोलीं, 'देख माँ, चाचा जी ने मुझे क्या दिया है। स्वयं भगवान् कृष्ण मुझे दे दिए हैं। अब यह मेरी सदैव रक्षा करेंगे। तुम्हारे और पिता जी के भगवान् के पास जाने के बाद भी।'

संत शिरोमणी श्री चरण दास जी तो अगले दिन ही अपने आश्रम दिल्ली चले गए, परन्तु बालिका सहजो बाई को एक अनुपम उपहार दे गए। बालिका सहजो को इस श्री कृष्ण की मूर्ति से इतना लगाव हो गया कि उठते, बैठते, सोते, खाते, सदैव वह इन ठाकुर जी की प्रतिमा को प्राणों की तरह सदा अपने साथ रखने लगीं। बालिका सहजो के लिए अब यह भगवान् कृष्ण मूर्ति ही उनकी आत्मा थी। प्रातः उठते ही वह बाल गोपाल को भोग लगातीं, उन्हें लड्डू का प्रसाद अर्पण करतीं। दिन बीतने पर उन्हें निहलातीं, धुलातीं, नए कपडे पहनातीं, भोजन खिलातीं, इत्यादि इत्यादि। जो समय उनकी अवस्था की बालिकाएं गुड्डे-गुड़ियों से खेलने में बितातीं, वह समय बालिका सहजो अपने बाल गोपाल के साथ बितातीं।

शनैः शनैः समय बीतता जा रहा था। अब सहजो बाई की अवस्था कोई पांच वर्ष की रही होगी। बरसात के दिन थे। वायु अवश्य कुछ तीव्र ही चल रही थी। वायु के साथ साथ वर्षा के कभी कभी छींटे भी पड़ जाते थे। समय घर में ही रहकर सुरक्षित विश्राम करने का था। परन्तु बालिका सहजो को ना जाने क्या सूझी कि वह बिना माता पिता को कुछ बिताए अपने गृह के समीप एक तालाव के पास टहलने चली गईं। सदैव की भांति बाल गोपाल उनके पास ही थे। वहां एक चरवाहा बालक तालाव में अपनी गैयों को पानी पिलाने लाया हुआ था। इधर गैयाँ पानी पी रहीं थीं, और वह तालाव के तट पर खड़ा ही उन्हें निहार रहा था। अचानक तालाव के तट पर बारिश के कारण कीचड़ से हुई उत्पन्न फिसलन के कारण वह तालाव में जा गिरा। अभाग्य से बच्चे को तैरना नहीं आता था। डूबते हुए बच्चे ने संभवतः एक बार सहायता की पुकार लगाईं, जो बालिका सहजो ने सुन ली। बालिका सहजो तुरंत तालाव के उस तट पर गईं, और ना जाने किस शक्ति से उन्होंने अपने बाल गोपाल ठाकुर जी को तालाव में यह पुकार लगाते हुए फ़ेंक दिया कि हे ठाकुर जी, आप तो चाचा जी की रक्षा करते हैं, मेरे माता पिता की रक्षा भी करते हैं, इस बाल ग्वाले की भी रक्षा कीजिए। साथ ही तीव्र स्वर में वह ग्रामवासीओं को रक्षा के लिए पुकारने लगीं। देखते ही देखते ग्रामवासिओं का एक झुण्ड एकत्रित हो गया। वह बच्चे की मदद तो करना चाहते थे, परन्तु उस गहरे एवं विस्तृत तालाव में वह उस बच्चे को कहाँ ढूंढें? इतने में ही एक चमत्कार हुआ। वायु की गति आंधी में बदल गई। तालाव में ऊंची ऊंची लहरें उठने लगीं। उन्हीं ऊंची ऊंची लहरों ने उस बच्चे एवं स्वयं बाल गोपाल ठाकुर जी को तालाव के तट पर ला कर पटक दिया। ग्राम-वासिओं ने उस बच्चे को होश में लाने का प्रयत्न किया। थोड़ी ही देर में बच्चा ऐसे उठ कर खड़ा हो गया जैसे कुछ हुआ ही ना हो, और कहने लगा, 'वह मोर पंख धारी बालक कहाँ है जिसने मुझे तालाव के तल से तट पर धकेल दिया। सभी ग्रामवासी अचंभित हो उसके मुख की ओर देखने लगे। लेकिन सहजो को समझने में देर नहीं लगी। बालिका सहजो तुरंत बाल गोपाल की ओर दौड़ीं। कृतज्ञता से उन्होंने बाल गोपाल को अपने सीने से लगा लिया। उनके नैनों से अश्रु धारा बह निकली, और एक काव्य उनके मुख से निकल पड़ा।

हम बालक तुम माय हमारी। पल पल मांहि करो रखवारी।।
निस दिन गोदी ही में राखो। इत वित बचन चितावन भाखो।।
विषै ओर जान नहीं देवो। ढुर ढुर जाऊं तो गहि गहि लेवो।।
मैं अनजान कुछ नहिं जानूं। बुरी भली को कुछ नहिं पहिचानूँ ।।
जैसी तैसे तुमहीं चीन्हेव। गुरु हैं ध्यान खेलौना दीनहेव।।
तुम्हरी रच्छा से ही जीवें। नाम तुम्हारो इमरत पीवें।।
दिष्टि तिहारो ऊपर मोरे। सदा रहूँ मैं सरने तेरे।।
मारो झिडको तौ नहिं जाऊं। सरक सरक तुमहीं पाई आऊं।।

बालिका सहजो के पिता ने भी अपनी पुत्री की सहायता की पुकार सुनी। दोनों माता पिता किसी अनहोनी दुर्घटना की आशंका लिए एवं हृदय में संत शिरोमणी श्री चरण दास जी को सहायता के लिए पुकारते हुए तालाव की ओर दौड़े। तालाव के समीप पहुँच वहां का दृश्य देख अचंभित हो गए। सभी ग्राम-वासिओं ने बालिका सहजो के चरण स्पर्श करने प्रारम्भ कर दिए थे। ऐसा सब का विश्वास था कि यह अवश्य ही सहजो की श्रद्धा के कारण बाल गोपाल द्वारा चमत्कार से ही संभव हुआ है। इन सब घटनाओं से अनभिज्ञ सहमी बालिका सहजो किंकर्तव्यविमूढ़ हुई चुपचाप रोती रहीं, और पिता के साथ घर आ गईं। इसके पश्चात ही गांव में ही नहीं आस पास के सभी क्षेत्रों में बालिका सहजो के बाल गोपाल के प्रति श्रद्धा के चर्चे फैलने लगे।

समय बीतता चला गया। ग्यारह वर्ष की हो गयीं सहजो। यह वह काल था जब बाल विवाह की राजस्थान में प्रथा थी। अतः पिता ने अपनी सुन्दर एवं प्रखर बुद्धि वाली पुत्री के लिए उपयुक्त वर ढूंढा, और विवाह की तैयारी होने लगी। उनके एक मित्र के पुत्र दूल्हे राजा बारह वर्ष की अवस्था के थे।

सहजो के पिता साहूकार श्री हरि प्रसाद जी स्वयं संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के आश्रम दिल्ली गए, विवाह में निमंत्रण देने। विवाह में अवश्य आने का आग्रह किया, सहजो को आशीर्वाद देने का। संत जी ने सहर्ष स्वीकार किया, और विवाह में सही समय पर पहुंचे। सहजो को देखा, आशीर्वाद दिया। वह तो जानते थे कि

सहजो का जन्म तो आध्यात्मिकता के लिया हुआ है, न कि सांसारिकता के लिए। लेकिन इस समय चुप रहे। भगवान् की लीला भी विचित्र है।

विवाह के सायंकाल बरात चढ़ रही थी। ऐसा कहते हैं कि किसी कारण घोड़ी बिदक गयी। दूल्हे राजा घोड़ी से गिर गए और उनका सिर एक पेड़ से टकराया। वहीं मृत्यु हो गयी। अब तो विलाप होना लगा। कहाँ तो विवाह की खुशियां मनाई जा रहीं थीं, और कहाँ यह मातम। दूल्हे के पिता संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के पास विलाप करते हुए पहुंचे। चरण पकड़ लिए और बोले, 'आप तो सिद्ध पुरुष हैं। हमारे सद्गुरु हैं। फिर सहजो तो आपकी ही पुत्री समान है, आपके फुफेरे भाई की पुत्री। उनके साथ ऐसा अनर्थ आपकी उपस्थिति में कैसे हो सकता हैं? संत जी, आप मेरे पुत्र को जीवित कीजिये।'

संत शिरोमणी श्री चरण दास जी का ह्रदय पिघल गया। वह बोले, 'पूर्णतः इसको जीवन दान देना तो मेरी शक्ति से बाहर है। वह तो प्रभु ही कर सकते हैं। हाँ, मैं इसकी आत्मा को कुछ समय के लिए इसके शरीर में प्रवेश अवश्य करा सकता हूँ। अगर इसकी आत्मा स्थाई रूप से शरीर को स्वीकारे तो मैं गुरुदेव भगवान् श्री सुक महाराज से स्तुति कर सकता हूँ। वो ही कुछ कर सकते हैं।'

डूबते तिनके को जैसे सहारा मिला। चरण पकड़ लिए संत जी के, 'संत जी ऐसा ही कीजिये। हम तो बहुत प्यार करते हैं अपने पुत्र से, और वह भी बहुत प्यार करता है हम से। वह अवश्य जीवित रहना चाहेगा।'

योग शक्ति से संत शिरोमणी श्री चरण दास जी ने उसकी आत्मा को मृतक शरीर में प्रवेश कराया। बालक जैसे निद्रा से जाग गया। उठते ही संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के चरण स्पर्श किये। बोला, 'संत जी आप तो अन्तर्यामी हैं। सब जानते हैं। मैं पिछले कितने जन्मों से आपका और सहजो का भक्त रहा हूँ। इस परिणय के बहाने सहजो ने मुझे मुक्त कर दिया। आप मुझे फिर से इस सांसारिक बंधनों में क्यों डालना चाहते हैं?'

सभी स्तब्ध। अब गुरु संत शिरोमणी श्री चरण दास जी दूल्हे के पिता से बोले, 'क्या चाहते हो?'

पिता ने श्री संत जी के चरण पकड़े और बोले ,'संत जी, हम अज्ञानीयों को क्षमा करो। इस हमारे पुत्र ने तो हमारी समस्त पीढ़ियों को तार दिया। प्रभु वही करो जो हमारा पुत्र चाहता है। उसे जाने की आज्ञा दो।'

बालक ने एक बार फिर संत जी के चरण स्पर्श किये। जाने की आज्ञा माँगी। संत जी ने उसे आशीर्वाद दिया। संत जी ने कहा. 'अब इन्हीं गाने बाजों के साथ जो बरात चढ़ने पर बज रहे थे, इसकी अंतिम क्रिया करो। सब प्रसन्नता के साथ अपने अपने घर जायो। आज तुम्हारा दर्शन एक योग पुरुष के साथ हुआ है।'

सभी घर वापस आये। तब संत जी सहजो से बोले:

चलना है रहना नहीं चलना विश्वाबीस ।
सहजो तनिक सुहाग पर कहाँ गुठावइ शीश ।।

"सहजो तेरा जन्म तो ईश्वर की भक्ति के लिए हुआ है। पारिवारिक जीवन के लिए नहीं।'

इतना सुनते ही सहजो ने संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के चरण पकड़ लिए। संत चाचा से प्रार्थना की, 'मुझे अपनी शरण में ले लो चाचा जी, और शिष्या स्वीकार करो।'

पिता साहूकार श्री हरि प्रसाद जी एवं माता श्रीमती अनूपी देवी जी ने भी संत शिरोमणी श्री चरण दास जी से अपनी पुत्री को शिष्या रूप में स्वीकार करने हेतु प्रार्थना की।

सहजो को तब संत शिरोमणी श्री चरण दास जी ने उनके साथ दिल्ली चलने की आज्ञा दी। माता श्रीमती अनूपी देवी के हृदय में कुछ दिन अपनी पुत्री के साथ

दिल्ली आश्रम में समय बिताने की इच्छा हुई। अन्तर्यामी संत शिरोमणी श्री चरण दास जी ने तत्काल श्रीमती अनूपी देवी की अंतर्मन दशा जानते हुए उनसे कहा, 'भाभी, अब देर किस बात की। शीघ्र ही सहजो के साथ दिल्ली चलने का प्रबंध करो। जितने दिन आश्रम में रहने की इच्छा हो, वहां का आतिथ्य स्वीकार करो।'

साहूकार श्री हरि प्रसाद जी से तब अनुमति लेकर तीनों प्राणी, संत शिरोमणी श्री चरण दास जी, माता श्रीमती अनूपी देवी जी एवं ११ वर्ष की बालिका सहजो दिल्ली को संत जी के आश्रम को प्रस्थान कर गए।

गुरुदेव - संत शिरोमणी श्री चरण दास जी

संत शिरोमणी श्री चरण दास जी साहूकार श्री हरि प्रसाद जी के ममेरे भाई थे। साहूकार श्री हरि प्रसाद जी के मामा श्री सेठ मुरलीधर जी एक संभ्रांत परिवार के अलवर के बड़े व्यापारी थे। वह साधु स्वभाव के त्याग-व्रत वाले प्रभु भक्त थे। उनकी पत्नी श्रीमती कुंजी देवी निर्मलता, सहनशीलता और नम्रता की देवी थीं। ऐसा बचपन में साहूकार श्री हरि प्रसाद जी के पिता ने उन्हें बतलाया था कि मामी श्रीमती कुंजी देवी की आस्था एवं श्रद्धा से प्रभावित स्वयं भगवान् कृष्ण ने उन्हें दर्शन देकर उनके गर्भ से एक संत आत्मा का पुत्र रूप में जन्म लेने का आशीर्वाद दिया था। यथा समय सन १७०६ में एक अत्यंत तेजवान पुत्र का जन्म उनके गृह में हुआ, जिसका नाम उन्होंने रखा 'रणजीत'। बाद में गुरु दीक्षा के पश्चात उनका नाम श्री चरण दास हुआ।

संत शिरोमणी श्री चरण दास जी ने स्वयं ही लिखा है।

डेहरे में मेरा जनम नाम रणजीत पिछानो ।
मुरली को सुत जान जात ढूसर पहिचानो ।।

अत्यंत प्रतिभाशाली बालक रणजीत ने एक वर्ष की अवस्था होते होते बोलना एवं चलना भी सीख लिया। इस अल्पायु में भी जब माँ श्रीमती कुंजी देवी भगवान् कृष्ण की आराधना करतीं तो बालक रणजीत माँ की स्तुति की घंटी का स्वर सुनते ही तुरंत गृह-मंदिर दौड़ कर आ जाते और पूजा में पूर्ण रूप से भाग लेते। ऐसा बालक रणजीत का प्रेम था भगवान् कृष्ण के प्रति।

विद्वानों ने आपके परिवार की आठ पीढ़ियों की वंशावली इस प्रकार दी है - श्री (रणजीत) चरण दास के पिता श्री मुरलीधर, श्री मुरलीधर के पिता श्री प्रागदास, श्री प्रागदास के पिता श्री जगनदास, श्री जगनदास के पिता श्री लाहड़दास, श्री लाहड़दास के पिता श्री गिरिधर दास, श्री गिरिधर के पिता श्री चतुरदास, तथा श्री चतुरदास के पिता श्री शोभनदास। श्री शोभनदास की तपस्या पर प्रसन्न होकर भगवान ने स्वयं वरदान दिया था।

भवन तिहारे मैं ही आऊँ । कलियुग माहीं भक्ति चलाऊँ ।।
तो कुल माही भक्ति चलेगी । आठवीं पीढ़ी जाय फलेगी ।।

पाँच वर्ष की आयु से ही आपकी रसना पर ''राम नाम'' का जाप चढ़ा हुआ था। पाँच साल की आयु में एक दिन जब आप ''राम-नाम'' के कीर्तन में मस्त थे, तो आपकी एक बैरागी तपस्वी से भेंट हुई। उस बैरागी ने आपको आम वृक्ष के नीचे अपनी गोद में लेकर प्रेम से दो पेड़े (मिठाई) देते हुए कहा:

कृपा प्यार बहुते ही किये। पुचकारे दो पेड़े दिये ।।
बहुरि कही तोहि सिषहम किन्हा। हूज्यों संत यही वर दीन्हा ।।
भव सागर को खेवट हवै है। वहु जग जीवन पार लंघौ है ।।

आपके पिता जी भी भक्ति में इतना तल्लीन रहते थे कि जंगल में जंगली जानवरो से रक्षा करने हेतु अंग रक्षक रखा गया था जो सायंकाल उन्हें घर सुरक्षित ले आता था। एक दिन पिता जी जंगल के एकान्त में साधना कर रहे थे। थोड़ी दूर बैठे अंग रक्षक को नींद आ गई। इसी बीच पिताजी अचानक लोप हो गये और किसी को कुछ पता न चला। पिता जी का लोप हो जाना घर पर छाये हुए संकट के बादलों का अन्त नहीं, आरम्भ था। तीन महीने के बाद आप के दादा एवं दादी का भी निधन हो गया। अब आपकी माँ बेसहारा हो गईं। उनके सामने अँधेरा ही अँधेरा था। उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें? अन्त में उन्होंने अपने मायके दिल्ली जाने का निश्चय कर लिया।

आपके नाना श्री भिखारीदास दिल्ली राज दरबार के अधिकारी थे। वे चाहते थे कि बालक रणजीत अरबी और फारसी पढ़े। तत्कालीन रीति के अनुसार छठे वर्ष में आपको पाठशाला भेजा गया। मौलवी अध्यापक ने आपकी पढ़ाई में रूचि उत्पन्न करने के लिए अनेक प्रयत्न किये पर कोई लाभ न हुआ। प्रेम से काम न चला तो मौलवी ने डाँट-डपट भी की, पर सब व्यर्थ साबित हुआ। इस क्रम में आपने अध्यापक को निर्देशित करते हुए कहा।

आल जाल तु क्या पढ़ावे । कृष्ण नाम लिख क्यों न सिखावे ।।
जो तुम हरि की भक्ति पढ़ाओं । तो मोकु तुम फेर बुलाओ ।।

मौलवी ने उनके नाना जी के कथनानुसार एवं अपनी वेवशी की वजह से उर्दू ही पढ़ाया, पर आपने उर्दू को आलतु फालतु पढ़ाई कहा तथा कृष्ण या हरि की भक्ति पढ़ाने को कहा। यदि हरि भक्ति से सम्बन्धित पढ़ाई कराओगे तो मैं पुनः आऊँगा। ऐसा कहकर बालक रणजीत अपने गृह चले गए। नाना जी ने एक बार फिर प्रयास किया और उन्हें मौलाना के पास शिक्षा हेतु भेजा। मौलवी ने पुनः आठ मास तक उन्हें पढ़ाने का प्रयास किया पर उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने तब एक पद की रचना की और मौलवी से कहा:

हमें आज से पढ़ना नाँही । जिकर ने होय फिकर के मांही ।।
सुनि मुल्ला हैरत में आया । इस लड़के पर रब की छाया ।।

आपका उपरोक्त भाव जानकर मौलवी आश्चर्य में आया कि इतनी कम आयु में भी बालक अध्यात्म की बात करता है। निश्चय इस लड़के पर ईश्वर की अत्यंत कृपा है।

विद्यालय तो अवश्य छोड़ दिया बालक रणजीत ने, लेकिन उन्हें नाना जी का उपकार सताने लगा। उन्हें लगा कि उनके पढ़ाई न कर पा सकने पर नाना जी एवं नानी जी दोनों ही दु:खी हैं। इस भाव को आपने इस प्रकार प्रकट किया:

सोचि-सोचि मन माँही ठानी । दु:खी होयेंगे नाना-नानी ।।
कैसे मिठू उनका कीया । ताते पढ़ने में मनदीया ।।

बालक रणजीत नाना जी एवं नानी जी के प्रति कृतज्ञ तो अवश्य थे, परन्तु उनके हृदय में सद्गुरु के मिलाप एवं भगवान् कृष्ण से मिलने की अत्यंत अभिलाषा थी। वह सद्गुरु के विरह की पीड़ा से क्षण-क्षण व्याकुल रहने लगे। आप सद्गुरु की खोज में जंगलों में भटकने लगे। इस अवस्था को स्वयं श्री चरण दास जी ने व्यक्त किया है।

ऐसी विरह अग्नि तन लागी । गई भूख और निद्रा भागी ।।
सतगुरु कूँ ढूंढन ही लागे । ढूंढे सब मत पंथ उदासी ।।

बालक रणजीत ने अभी ग्यारहवें वर्ष में कदम रखा ही था कि देश में चेचक महामारी ने त्राहि त्राहि मचा दी। लाखों की संख्या में लोगों की मृत्यु का कारण यह महामारी बन रही थी। अभाग्य से बालक रणजीत की माता इस महामारी की शिकार हो गईं। नाना जी एवं नानी जी ने बालक के लालन पालन का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। लेकिन बालक का किसी भी प्रकार से मन लगता ही नहीं था। माता की मृत्यु के कुछ महीनों पश्चात ही एक दिन घर से बालक चुपचाप निकल गया।

घर से निकल कर भटकने लगे वन में। एक दिन भूख प्यास से व्याकुल हो एक वृद्ध ब्राह्मणी के झोंपड़े के आगे बेहोश हो गए। वृद्ध ब्राह्मणी के प्रयास से उन्हें होश आया। वृद्ध ब्राह्मणी ने तब उन्हें खाना पानी दिया, और पूछा, 'बेटा, इतनी कम आयु में तुम जंगल में क्यों भटक रहे हो?'

ग्यारह वर्ष के बालक रणजीत ने बड़े ही भोलेपन से उत्तर दिया, "सद्गुरु और कृष्ण को ढूंढ रहा हूँ माँ। क्या आप मुझे उनके पास तक पहुंचा सकती हैं?"

वृद्ध ब्राह्मणी स्तब्ध। वृद्ध ब्राह्मणी बोली, "बेटा, मैं तो कृष्ण के दर्शन नहीं करा सकती, लेकिन हाँ, एक मार्ग अवश्य बता सकती हूँ। मार्ग अत्यंत कठिन है। क्या कर पाओगे?"

बालक रणजीत को तो यह शब्द अमृत समान लगे। वह बोले, "माँ मैं कुछ भी करने का प्रयास करूंगा। बस एक बार, एक बार, मुझे सद्गुरु और कृष्ण के दर्शन करा दो।"

वृद्ध ब्राह्मणी बोलीं, "बेटा, इस वन में भगवान् सुकदेव का वास है। भगवान् सुकदेव, भगवान् वेद व्यास के पुत्र। तू अगर उनकी स्तुति कर उन्हें प्रसन्न कर सके तो वहीं हैं जो तुझे कृष्ण के दर्शन करा सकते हैं। इसके लिए कठोर तपस्या

की आवश्यकता होगी। क्या तेरा यह बालपन का शरीर इतनी घोर तपस्या कर सकेगा"?

बालक रणजीत बोले, "माँ, मेरा मार्ग दर्शन करो। मैं अवश्य ही घोर तपस्या करने का पूर्ण प्रयास करूंगा। माँ, अगर मुझे भगवान् सुकदेव मिल गए तो मैं उनसे कैसे भेंट करूँ और उनसे क्या मांगू?"

वृद्ध ब्राह्मणी बोलीं, "पुत्र भगवान् सुकदेव के दर्शन पर तुम बस इतना करना कि उनके चरण पकड़ उनसे प्रार्थना करना कि वह तुम्हें अपना अपना शिष्य स्वीकार कर लें। भगवान् सुकदेव अन्तर्यामी हैं। वह तुम्हारी सभी इच्छाएं पूर्ण कर देंगे और तुम्हें भगवान् कृष्ण के भी दर्शन करा देंगे।"

बालक रणजीत को यह वचन अत्यंत प्रिय लगे और वृद्ध ब्राह्मणी की कुटिया के बाहर ही एक नीम वृक्ष के नीचे तप करने बैठ गए। वृद्ध ब्राह्मणी उनके शरीर को जीवित रखने के लिए किसी प्रकार उन्हें भोजन कराती रहीं। दो वर्ष तक कठोर तप किया। बालक के इस कठोर तप से प्रभावित हो भगवान् सुकदेव प्रगट हुए। भगवान् सुकदेव बोले," क्या चाहिए पुत्र?"

बालक रणजीत जी ने तुरंत उनके चरण पकड़ लिए और कहने लगे, 'मुझे अपना शिष्य बना लीजिये और ज्ञान दीजिये, भगवन'।

उनके तप से प्रसन्न भगवानावतार श्री सुकदेव जी ने उन्हें अपना शिष्य बना लिया तथा अपने साथ आश्रम में ले आए। भगवान् सुकदेव ने उन्हें दीक्षित किया और नाम दिया 'चरण दास'।

बालक चरण दास' की कुशाग्र बुद्धि ने अल्प समय में ही समस्त वेद वेदांतो की शिक्षा गुरुदेव भगवान् श्री सुकदेव से ले ली। शिक्षा की समाप्ति पर करबद्ध गुरु के समक्ष खड़े हो गए और उनके चरण पकड़ कर बोले, "हे प्रभु, आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे भगवान् कृष्ण के दर्शन कराएं।"

शिष्य की भगवान् कृष्ण के प्रति इतनी गहन प्रीति देख भगवान् सुकदेव पिघल गए और वचन दिया कि शीघ्र ही उन्हें भगवान् कृष्ण के दर्शन होंगे। उन्होंने आदेश दिया, 'अभी वृद्ध ब्राह्मणी की कुटिया पर वापस जाओ और 'भक्ति सागर' ग्रन्थ की रचना करो।'

गुरु के आदेश पर तब चरण दास जी वृद्ध ब्राह्मणी की कुटिया में वापस लौट आये। वृद्ध ब्राह्मणी को तो जैसे अपना पुत्र ही वापस मिल गया। दोनों वृद्ध ब्राह्मणी और पुत्रवत चरण दास जी उस सायं बहुत देर तक आध्यात्मिक बातें करते रहे और गुरु प्रसाद की फलश्रुति चर्चा करते रहे।

तब चरण दास जी ने गुरु आदेशानुसार 'भक्ति सागर' की रचना प्रारम्भ कर दी। महान ग्रन्थ 'भक्ति सागर' भगवान् कृष्ण की स्तुति से ओत प्रोत ग्रन्थ है।

महाकवि संत शिरोमणी श्री सरसमाधुरी जी ने इस 'भक्ति सागर' ग्रन्थ की महिमा काव्य रूप में ठीक ही कही है।

ग्रन्थ महासागर उजागर सब विश्ववीच वांचत हैं जाको कवि कोविद और ज्ञानी हैं ।
साधु बुद्धिमन्त विद्विजन विविध भांति मनन करत हिय धरत योगी यति ध्यानी हैं ।।
त्यागी वैरागी जन-पढ़त ताय चितलगाय चतुर्वर्गदायक यह निश्चय कर जानी है ।
कहे सरसमाधुरी सुनाय सब सन्तन को याके अर्थ समझे होत जीवन्मुक्त प्राणी है ।।

'भक्ति सागर' रचना की समाप्ति पर चरण दास जी को बहुत प्रसन्नता हो रही थी। वसंत ऋतु का आरंभ हो चुका था। आज चैत्र मास का पहला दिवस था। मौसम अत्यंत सुहावना हो रहा था। शीत ऋतु के पतझड़ के बाद पेड़ों में नए पत्ते आने लगे थे। आम के वृक्ष बौरों से लद गए था। खेत सरसों के फूलों से भरे पीले दिखाई देने लगे थे। अनुभव हो रहा था कि कवि राजों ने इसे ऋतुराज क्यों कहा है? पौराणिक कथाओं के अनुसार तो इस मौसम को कामदेव का पुत्र कहा गया है। वसंत ऋतु का वर्णन करते हुए स्वयं प्रभु कृष्ण कहते हैं कि ऐसा प्रतीत होता है जैसे रूप व सौंदर्य के देवता कामदेव के घर पुत्रोत्पत्ति का समाचार पाते ही प्रकृति झूम उठी हो। पेड़ों ने उसके लिए नव पल्लव का पालना डाला हो। पुष्पों ने वस्त्र

पहनाए हों। मंद मंद सुगन्धित पवन झुला रही हो। कोयल गीत सुनाकर दिल बहला रही हो। उन्हें स्मरण आया कि भगवान कृष्ण ने गीता में स्वयं कहा है, 'ऋतुओं में मैं वसंत हूँ।'

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ।।१०.३५।।

वसंत ऋतू की महिमा में किसी कवि ने ठीक ही कहा है।

डार द्रुम पलना बिछौना नव पल्लव के, सुमन झिंगूला सोथा तन छबि भारी दै ।
पवन झूलावै, केकी-कीर बतरावैं 'देव', कोकिल हलावै हुलसावै कर तारी दै ।।
पूरित पराग सों उतारो करै राई नोन, कंजकली नायिका लतान सिर सारी दै ।
मदन महीप जू को बालक बसंत ताहि, प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै ।।

गुरु सुकदेव की आज उन्हें बहुत याद आ रही थी। मन में विचार करने लगे, 'हे प्रभु, मैंने आपके आदेशानुसार 'भक्ति सागर' की रचना समाप्त कर दी है। हे गुरुदेव, दर्शन देकर इसे स्वीकार करो। मुझे मेरे प्रियतम श्री कृष्ण के दर्शन कराओ।'

तभी एक विशेष सुगंधी से समस्त वातावरण पुष्पमय हो गया । इस मादक सुगंधी से बेहोशी सी छाने लगी। तभी उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि कहीं दूर कोई बांसुरी बजा रहा है। बांसुरी का स्वर धीरे धीरे तीव्र पर अति मनमोहक होता चला जा रहा था। आँखें खोलने का प्रयास करते हैं श्री चरण दास जी, और यह क्या! भगवान कृष्ण की मोहक बांसुरी बजाती हुए छवि उन्हें अपने समक्ष दिखलाई पड़ती है। उनके मुख से स्वतः ही भगवान् की स्तुति निकल पड़ती है।

कस्तूरी तिल्कम ललाटपटले, वक्षस्थले कौस्तुभम ।
नासाग्रे वरमौक्तिकम करतले, वेणु करे कंकणम ।।
सर्वांगे हरिचन्दनम सुललितम, कंठ च मुक्तावाली ।
गोपस्त्री परिवेश्तिथो विजयते, गोपाल चूड़ामणि ।।

भगवान् के इस सुन्दर रूप को देखकर श्री चरण दास इतने मोहित हो जाते हैं कि बस एकटक उन्हें ही देखते रहते हैं। साधारण नमस्कार शिष्टाचार की भी विस्मृति हो जाती है। तभी उन्हें एक और स्वर सुनाई देता है, "चरण दास क्या प्रभु को प्रणाम नहीं करोगे"।

यह तो मेरे गुरुदेव का स्वर है। सब कुछ भूलकर उनके चरणों में गिर जाते हैं श्री चरण दास।

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागूं पाँय ।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दिओ बताय ।।

गुरुदेव को प्रणाम कर भगवान् की सुध आती है। चरणों में गिर जाते हैं श्री चरण दास भगवान् के। एक शब्द भी मुख से नहीं निकल रहा। जिसे पूरी निधि मिल गयी हो, वह अब और क्या इच्छा रखे? भगवान् मुस्कराते हुए उनके सर पर हाथ रख आशीर्वाद देते हैं, और फिर धीरे धीरे बांसुरी का स्वर मंद होता चला जाता है। आज श्री चरण दास के जीवन की इच्छापूर्ति हुई है। उनका हृदय गुरुदेव के प्रति सम्मान और अभिवादन से झुक जाता है। गुरुदेव ने अपना वचन निभाया, और मुझे मेरे प्रियतम के दर्शन कराए।

पास ही वृद्ध ब्राह्मणी अचेत अवस्था में पडी हुई थी। भगवान् के दर्शन से उन्हें भी आज मुक्ति मिल गई। श्री चरण दास जी स्वयं कहते हैं कि उन्हें ऐसा लगा जैसे वृद्ध ब्राह्मणी को प्रभु अपने साथ साकेत धाम ले गए।

चेतन अवस्था में आने पर गुरु के आदेश की प्रतीक्षा करते हैं।

'वत्स, पुत्र भाँति इन वृद्ध ब्राह्मणी का दाह संस्कार करो, और दिल्ली की ओर प्रस्थान करो। वहीं अपना आश्रम स्थापित कर सनातन धर्म का प्रचार एवं प्रसार करो,' गुरुदेव की आज्ञा सुनाई दी।

आपने सद्गुरु भगवान् श्री सुकदेव के प्रति समर्पण की भावना को इस प्रकार प्रकट किया है।

पितु सूँ माता सौ गुना, सुत को राखै प्यार ।
मन सेती सेवन करै, तन सूँ डाँट अरू गार ।।१।।
माता सूँ हरि सौ गुना, जिनसे सौ गुरुदेव ।
प्यार करैं औगुन हरै, चरणदास शुकदेव ।।२।।

गुरुदेव की आज्ञानुसार श्री चरण दास जी ने दिल्ली आकर अपना आश्रम स्थापित किया। अब वह संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के नाम से विख्यात हो गए।

मुग़ल सम्राट जहांगीर का तब दिल्ली में शासन था। सनातन धर्म लोप होता चला जा रहा था। ऐसे में संत श्री चरण दास जी के प्रभाव से सनातन धर्म अनुयायीओं में एक ऊर्जा का सृजन हुआ। उनके बढ़ते प्रभाव से स्वयं मुग़ल शहंशाह जहांगीर को असुरक्षा की भावना ने घेर लिया। लेकिन वह कुछ कर भी तो नहीं सकता था। उसके मंत्रीगणों ने सलाह दी कि श्री चरण दास जी को छेड़ना गृह-युद्ध को आमंत्रण करने के बराबर था।

आज जन्माष्टमी का दिवस था। यह उत्सव संत चरण दास जी के आश्रम में बड़ी धूम धाम से मनाया जाता था। सभी आश्रमवासी व्रत आदि कर रात्रि को १२ बजे भगवान् कृष्ण उत्सव मना कर उन्हें भोग लगाकर ही अपना व्रत तोड़ते थे। संत श्री चरण दास जी के अनुयाईओं द्वारा भेंट किये फलों और मिठाईओं का अम्बार लग जाता था इस दिन। आज शहंशाह जहांगीर को भी एक उपहास सूझा। उसने दो टोकरियाँ मंगवाईं। दोनों टोकरिओं में कीचड़ भर बस ऊपर एक पर्त घेवर की लगा कर संत जी के आश्रम में उपहार स्वरूप भेज दी। शहंशाह के सिपाही उपहार लेकर संत जी के दरबार में पहुंचे। संत जी ने अपनी दिव्य दृष्टि से देख लिया कि टोकरिओं में क्या था। टोकरिओं को स्पर्श किया और एक टोकरी उपहार प्रतिस्वरूप शहंशाह के पास वापस भेज दी। जब टोकरी शहंशाह के पास पहुँची तो उसमें से बड़ी ही मधुर आम्र सुगन्ध आ रही थी। शहंशाह ने उत्सुकतावश तुरंत उस टोकरी का निरीक्षण किया। उसमें तो मिठाई की पर्त के

नीचे आम भरे हुए थे। यह देखते ही शहंशाह को अपनी करतूत पर बड़ा ही दुःख हुआ और कहते हैं कि सम्राज्ञी नूरजहां को लेकर उसने तुरंत संत के आश्रम में आकर उनसे क्षमा माँगी तथा भविष्य में ऐसा कभी न करने का वचन दिया। तभी से शहंशाह जहांगीर संत को गुरु सदृश्य सम्मान देने लेगा। ऐसे महान सिद्ध पुरुष थे संत चरण दास जी।

संत शिरोमणी श्री चरण दास जी ने अनेक ग्रंथों की रचना की, जिसमें प्रमुख हैं, अष्टांगयोग, नरसाकेत, सन्देह सागर, भक्ति सागर, हरिप्रकाश, अमरलोक खण्डधाम, भक्तिपदारथ, शब्द, दानलीला, मनविरक्तकरन गुटका, राममाला, ज्ञानस्वरोदय इत्यादि इत्यादि।

संत शिरोमणी जाति पाति एवं प्राचीन रूढ़िवादी नामकरण की परम्परा के विरोधी थे। कर्म के आधार पर नामकरण करने के पक्षधर थे, वंश के आधार पर नहीं। इसी क्रम में वंशधारी ब्राह्मणों पर कठोर प्रहार करते हुए, उन्होंने ब्राह्मण शब्द को परिभाषित किया।

ब्रह्मण सोइ जो ब्रह्म पिछानै, बारह जाता भितर आनै ।
पाँचो वस कारे झूठ न भाखै, दिया जनेऊ हृदय राखै ।।
आतम विद्या पढै पढ़ावै, परमातम का ध्यान लगावै ।
काम क्रोध मद लोभ न होइ, चरनदास कहै ब्रह्मण सोइ ।।

सद्गुरु भगवान् सुकदेव ने सन १७७१ में उन्हें दर्शन देकर बतलाया कि इस समय से बारह वर्ष पश्चात वह स्वयं उन्हें साकेत धाम लेने के लिए आएँगे। तब उन्होंने एक पद की रचना की।

बारह बरस मै और हूँ, मृत्यु लोक के माहि ।
फिर जहाँ ईश्वर निकट, जग में रहना नाहि ।।

७९ वर्ष की आयु में सन १७८५ में सद्गुरु भगवान् सुकदेव स्वयं उपस्थित हुए और उन्हें विमान में बिठाकर साकेत धाम ले गए।

संत चरण दास शिष्या सहजो बाई

बालिका सहजो एवं उनकी माता श्रीमती अनूपी देवी के साथ संत शिरोमणी श्री चरण दास जी शीघ्र ही दिल्ली स्थित आश्रम में पहुँच गए। आश्रम में श्री छीतरमल जी (साहूकार श्री हरि प्रसाद जी के भतीजे एवं संत जी के निकटतम शिष्य) ने उनका भव्य स्वागत किया। संत जी के आदेश पर श्री छीतरमल जी बालिका सहजो एवं उनकी माता श्रीमती अनूपी देवी जी को आश्रम के अतिथि गृह में ले गए। अभी बालिका सहजो एवं उनकी माता को अतिथि गृह में आए कुछ क्षण ही बीते होंगे कि संत शिरोमणी महाराज एक संत स्त्री को लेकर अतिथि गृह में पधारे। भाभी श्रीमती अनूपी देवी का अभिनन्दन करते हुए उन्होंने उन संत का बालिका सहजो एवं माता श्रीमती अनूपी देवी से परिचय कराया।

संत शिरोमणी श्री चरण दास जी श्रीमती अनूपी देवी जी से बोले, 'भाभी जी, यह मेरी बड़ी बहन (चचेरी बहन) संत दया बाई हैं। संभवतः आपको मेरे चाचा जी श्री केशव प्रसाद जी का स्मरण हो जो डेहरा ग्राम निवासी हैं। यह उन्हीं की पुत्री हैं। इन्होंने संत रूप में अविवाहित रहकर अपना जीवन भगवान् कृष्ण को अर्पित कर दिया है। यही इस आश्रम की संचालिका हैं। दीदी दया बाई का आध्यात्मिक स्थान यद्यपि मेरे से उच्च है, लेकिन मेरे गुरुदेव भगवान् सुकदेव के आदेश के कारण मुझे इन्हें दीक्षा देने के लिए विवश होना पड़ा। फिर भी मैं इन्हें शिष्या न मानकर अपनी माता स्वरुप ही इनका सम्मान करता हूँ। आज मैं सहजो को इन्हें सौंप रहा हूँ। सहजो को इस आश्रम में दीदी दया बाई स्वरुप में एक और माँ मिल गईं। धन्य है सहजो जिसे दो दो माताओं का वात्सल्य प्राप्त होगा। सहजो पुत्री, सम्बन्ध में दीदी दया बाई तुम्हारी बुआ हैं, और अब तुम्हारी माँ भी। इनके चरण स्पर्श कर इनका आशीर्वाद प्राप्त करो।'

बालिका सहजो बुआ संत दया बाई के चरण छूने ही लगी थीं कि संत दया बाई ने उन्हें हृदय से लगा लिया और बोलीं, 'संत जी तो अत्यंत विनम्र भाषा में बातें करते हैं। संत जी ने तुम्हें अपनी शिष्या स्वीकार किया है, और मैं भी इनकी शिष्या हूँ। अब सांसारिक सम्बन्धों को भुलाकर हम आध्यात्मिक सम्बन्धों को अपनाएं। तुम

मेरी गुरु-बहन हुईं, और यही सम्बन्ध हम मानेंगे। बहनें एक दूसरे के चरण स्पर्श नहीं करतीं, आलिंगन कर प्रेम बांटती हैं।'

इस प्रकार मिलन हुआ दो महान विभूतियों का, संत दया बाई एवं सहजो का। बालिका सहजो ने जैसे ही गुरु-बहन संत दया बाई का आलिंगन किया, उन्हें कुछ ऐसी अनुभूति हुई जैसे स्वयं राधा देवी ने उन्हें अपनी शरण में ले लिया हो।

बालिका सहजो के नेत्रों से अश्रु धारा बहने लगी। वह गुरु-बहन संत दया बाई से बोलीं, 'हे दीदी माँ, मैं मूर्ख, अज्ञानी, अनपढ़ और गंवार हूँ। मुझे संत चाचा जी ने अपनी शिष्या स्वीकारा अवश्य है, लेकिन में संभवतः उसके योग्य नहीं हूँ। मैं आपकी शरण में हूँ। मैं प्रभु अवतार संत चाचा जी का शिष्य बनने में समर्थ हो सकूं, अब यह आप पर ही निर्भर है।'

बालिका सहजो की इस विनम्रता से संत दया बाई द्रवित हो गईं। तब वह गुरुदेव संत शिरोमणी श्री चरण दास जी एवं श्रीमती अनूपी देवी जी से बोलीं, 'हे गुरुदेव एवं माँ स्वरुप भाभी, आपकी आज्ञा हो तो मैं सहजो को अपने साथ अपने कक्ष में ले जाऊं। कल प्रातः शुभ दिन एवं शुभ मुहूर्त है। मैं सहजो को गुरुदेव द्वारा दी जाने वाली दीक्षा को स्वीकार करने के लिए तैयार करना चाहती हूँ।'

दोनों ही, संत जी एवं माता अनूपी देवी जी, ने सर हिलाकर तुरंत अनुमति दे दी। तब बालिका सहजो को लेकर संत दया बाई अपने कक्ष की ओर चल दीं।

सांय काल का शीघ्रता से उपागम हो रहा था। भोजन का समय निकट ही था। गुरुदेव संत शिरोमणी श्री चरण दास जी केवल अपनी बड़ी बहन संत दया बाई के हाथ का बना भोजन ही ग्रहण करते थे। तुरंत संत दया बाई ने भोजन पकाने का प्रबंध करना प्रारम्भ कर दिया। बालिका सहजो बाई भी उसमें हाथ बटाने लगीं। आज केवल संत शिरोमणी श्री चरण दास जी ही नहीं, बल्कि उनके दो और अति विशिष्ट अतिथि भी थे, बालिका सहजो बाई एवं उनकी माता जी श्रीमती अनूपी देवी जी। समय पर भोजन बना। गुरुदेव संत जी के साथ माँ श्रीमती अनूपी

देवी जी ने भोजन ग्रहण किया, तद्पश्चात स्वयं संत दया बाई एवं बालिका सहजो ने।

भोजन की समाप्ति के बाद संत दया बाई करबद्ध माता श्रीमती अनूपी देवी से बोलीं, 'भाभी, जब तक आप आश्रम में हैं, प्रतिदिन आप मेरे ही कक्ष में गुरुदेव के साथ भोजन करें। भोजन तैयार होने पर मैं आपको सन्देश भिजवाती रहूंगी। इसके अतिरिक्त और भी कोई सेवा की आवश्यकता हो तो मुझ से अथवा ब्रह्मचारी छीतरमल से बेझिझक कहें। मैं जानती हूँ कि आप यात्रा से थकी हुई हैं, अतः अब अतिथि गृह में अब विश्राम कीजिए। कल प्रातः नास्ते पर फिर मिलेंगे। सहजो को कृपया मेरे पास ही रहने दीजिए।'

इस प्रकार संत दया बाई के मधुर शब्द सुन माता अनूपी देवी के नेत्रों से अश्रु छलक पड़े और वह बोलीं, 'प्रिय पुत्री दया बाई, सहजो को तुम्हारे रूप में माँ मिल गईं। मैं अब सहजो की ओर से पूर्ण आश्वस्त हूँ। अगर संत जी की आज्ञा हो तो मैं कल अपने गृह जाने के लिए आज्ञा चाहूंगी। वहां मेरे पति अकेले हैं। मेरे लौटने की प्रतीक्षा में हैं।'

संत शिरोमणी श्री चरण दास जी तब बोले, 'भाभी जी, जानता हूँ आपको घर वापस पहुंचने की शीघ्रता है। मेरा ऐसा निवेदन है कि कल सहजो के दीक्षा ग्रहण समारोह के पश्चात आप परसों घर को पधारें तो अच्छा रहेगा।'

'अवश्य, अवश्य, श्री संत जी। जैसी आपकी आज्ञा', इस प्रकार वचन बोलकर अत्यंत प्रसनता से श्रीमती अनूपी देवी ब्रह्मचारी छीतरमल जी के साथ तब अतिथि गृह में विश्राम हेतु चली गईं। बालिका सहजो संत दया बाई के समीप उनके कक्ष में ही रहीं।

भोजन पश्चात जब गुरुदेव संत शिरोमणी श्री चरण दास जी अपने कक्ष की ओर एवं श्रीमती अनूपी देवी जी अतिथि गृह चली गईं, तब संत दया बाई ने बड़े प्रेम से बालिका सहजो को अपने समीप बिठाया। प्रेम से वह उनके केशों से क्रीड़ा करती हुई बोलीं, 'प्रिय सहजो, कल तुम्हारा दीक्षा समारोह होगा। इससे पूर्व मैं तुम्हें इस

समय गुरु महत्व एवं गुरु मन्त्र के बारे में ज्ञान देने का प्रयास करूंगी। ध्यान से सुनना।'

बालिका सहजो की उत्सुकता अत्यंत बढ़ गई। वह टकटकी लगाए अपनी सांसारिक सम्बन्ध से बुआ एवं आध्यात्मिक सम्बन्ध से गुरु-बहन संत दया बाई के चरणों में दृष्टि लगाए गंभीरता से उनके द्वारा दिए हुए ज्ञान को लेने का प्रयास करने लगीं। संत दया बाई ने बोलना प्रारम्भ किया।

गुरूमंत्रो मुखे यस्य तस्य सिद्धयन्ति नान्यथा ।
दीक्षया सर्वकर्माणि सिद्धयन्ति गुरूपुत्रके ।।

हे बहन, जिसके मुख में गुरूमंत्र है, उसके सब कर्म सिद्ध होते हैं, दूसरे के नहीं। दीक्षा के कारण ही गुरु परम्परा के माध्यम से शिष्य भगवान् से जुड़ जाता है।

दीक्षा का अर्थ वेदों व पुराणों में विभिन्न रूपों से हमारे महर्षियों ने प्रदान किया है। दीक्षा शब्द में दो व्यंजन और दो स्वर मिले हुए हैं।

"द", "ई", "क्ष", "आ"

"द" का अर्थ है दमन। सदगुरुओं से ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात विवेक से जब संकल्पवान होकर संसार, शरीर के विषयों से निरासक्त, अपने मन को एकाग्र करके अनुकूलता का जीवन जीने का अभ्यास करते हैं, उसे दमन कहते हैं, या इन्द्रियों का निग्रह मन का निग्रह का नाम दमन है।

"ई" का अर्थ ईश्वर उपासना है। विषयातीत मानसिक बुद्धि को सदगुरु और शास्त्र के द्वारा बतायी हुई विधि के अनुसार परमात्मा में एक ही भाव से स्थिर रखने का नाम ईश्वर उपासना है।

"क्ष" का अर्थ क्षय करना है। उपासना करते करते जब हमारी मनोस्थिति परमात्मा में लीन होने लगती है, उस क्षण में जो वासना जलकर नष्ट होती है, उसे क्षय कहते हैं।

"आ" का अर्थ आनंद है। मन, बुद्धि, चित्त आदि के विषय (काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह) विकारों का अवकाश जब हमारे जीवन में होने लगता है और अंतःकरण में दिव्य चेतना का प्रकाश होने लगता है, तब प्रसन्नता, समता और प्रेम प्रकट होने लगता है, उस क्षण का नाम आनंद है। जब हमारा जीव भाव, शिव भाव में परिणित होता है, उस अवस्था का नाम आनंद है, जो शब्द का नहीं अनुभव का विषय होता है।

संत दया बाई उपदेश देती जा रहीं थीं। आगे वह बोलीं, हे बहन सहजो, 'स्वयंभू अगम' ग्रन्थ में लिखा है:

यथा मर्ग पतिम द्रष्टवा भीतो याति वने गजः ।
अधिक्षीतो अर्चये लिंगं तथा भीतो महेश्वरी ।।

जिस प्रकार हाथी वन में सिंह देखकर भयभीत हो जाता है, उसी प्रकार अदीक्षित पुरुष अथवा नारी इस भव अरण्य माया के भय से कम्पित रहता है। अर्थात गुरु के बिना नर/ नारी का भवभय-मुक्त होना असंभव है।

हम मानवों के लिए मार्ग दर्शक अत्यंत आवश्यक है। यह विश्व एक उस घने जंगल के सामान है जहां ऊँचे ऊँचे वृक्षों ने सूर्यदेव के प्रकाश को पूर्ण रूप से ढक लिया है। पगडंडी दिखाई नहीं देती। ऊपर से भयावय जंगली जानवर, सर्प इत्यादि काल रूपी मुख खोले खड़े हैं। ऐसे में गुरु मार्ग दर्शाते हुए, सही पगडंडी पर चलाते हुए, खाईओं से, जंगली जानवरों से रक्षा करते हुए, गंतव्य स्थान पर ले जाते हैं।

गुरु की कृपा और उनके अमर्त बोध से मानव परम पद पाता है। इस कारण दीक्षा मानव को अनिवार्य और अति अवश्यक है।

विश्व पथ बहुत निराला है। इसे साधारणतया समझ पाना असंभव सा लगता है। ईश्वर की कृपा से ही उसकी माया को समझना संभव हो सकता है। गुरु ईश्वर का ही एक रूप और उनकी माया समझने का एक मात्रा साधन है।

श्रुति कहती है कि दीक्षा के अभाव में सभी कर्म निष्फल होते है। किसी भी प्रकार का जप, तप तथा पूजा आदि गुरु दीक्षा बिना फलित नहीं होते। गुरु दीक्षा से गुरु के मार्ग दर्शन से करोड़ो जन्मों के पाप दूर हो जाते है।

सनातन समय से ही श्री गुरुदेव द्वारा मन्त्र से दीक्षित करने की प्रथा रही है। श्री गुरुदेव का उद्देश्य अपने शिष्य को सांसारिक कष्टों से छुटकारा दिलाकर शान्ति की अनुभूति कराना है। श्री गुरुदेव जानते हैं कि इसके लिए बुद्धि का शुद्ध होना एवं प्रवर्तियों का सात्विक होना अत्यंत आवश्यक है। बुद्धि शुद्ध होने पर आत्म विकास की प्रेरणा जागती है, तथा शिष्य लौकिक एवं परलौकिक असीम सुखों को भोगने का अधिकारी बनता है।

कल प्रातः गुरुदेव संत शिरोमणी श्री चरण दास जी तुम्हें गायत्री मन्त्र से दीक्षित करेंगे। गायत्री मन्त्र सद्बुद्धि प्रदाता, प्रेरणादायक और मानव कल्याणकारी मन्त्र है। यह मन्त्र व्यक्तिगत और सामाजिक, सभी उच्च जीवन मूल्यों को ग्रहण करने की प्रेरणा देता है। संक्षेप में, यह मन्त्र मानव मात्र का सम्पूर्ण जीवन है।

अथर्व वेद १९/७१/१ में गायत्री मन्त्र के बारे में लिखा है:

ओ३म् स्तुता मया वरदा वेदमाता,
प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्,
मह्यं दत्तवा व्रजत ब्रह्मलोकम् ।।

इसका अर्थ है कि मैंने इष्टफल देने वाली वेदमाता गायत्री का स्तवन अर्थात् अध्ययन कर लिया है। हे गुरुजनो, इस का मुझे और प्रवचन कीजिये। द्विजन्मों एवं द्विजों को यह वेदमाता पवित्र करती है। स्वस्थ और दीर्घ आयु, प्राणविद्या,

उत्तम सन्तानों, पशुपालन, पुण्य और यश, धनोपार्जन विद्या, ब्रह्म के तेजस्वरूप का परिज्ञान व इनका सदुपदेश मुझे देकर, हे गुरुजनों, आलोकमय ब्रह्म तक मुझे पहुंचाइये।

गायत्री मन्त्र की अनुभूति सम्राट विश्वरथ को उनकी साधना की अवधि में हुई थी। साधना में उन्हें एक तीव्र प्रकाश का भाव हुआ जिसका स्थान शीघ्र ही एक देवी की आकृति ने ले लिया। उस देवी के पाँच सिर थे, जो भिन्न दिशाओं में देख रहे थे। उस देवी के दस हाथों में त्रिदेव के पास रहने वाले सभी अस्त्र थे। देवी शक्ति के दर्शन करते ही, सम्राट विश्वरथ बैठकर नतमस्तक हुए, और स्वतः ही उनके मुख से संस्कृत का एक श्लोक निकल पड़ा:

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं ।
भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।

इसका अर्थ है कि हे तीनों लोकों की स्वामिन, मैं आपके प्रकाशमान रूप का ध्यान करता हूँ। आपका ये रूप मेरी बुद्धि को सदैव सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करे।'

संत दया बाई ने इस प्रकार बालिका सहजो को दीक्षा का महत्व समझाया।

रात्रि का तीसरा प्रहार प्रारम्भ हो चुका था। संत दया बाई ने बालिका सहजो की शैया पृथ्वी पर ही अपने समीप ही लगाई। बालिका सहजो यात्रा से थकी हुई भी थी, तुरंत निद्रा के आगोश में चली गई।

प्रातः जब सहजो निद्रा से जागीं तो उन्हें संत दया बाई द्वारा दी गई शिक्षा का एक एक शब्द याद था। सहजो निद्रा से जाग गईं हैं, यह जैसे ही संत दया बाई ने जाना, उन्होंने सहजो को नित्य क्रिया से निवृत हो पवित्र यमुना नदी में स्नान कर शीघ्र वापस आने की आज्ञा दी।

नित्य क्रिया से निवृत होकर एवं पवित्र माँ यमुना नदी में स्नान कर जब तक बालिका सहजो बाई लौटीं तब तक संत दया बाई ने यज्ञ अग्नि प्रज्वलित कर सहजो को दीक्षा प्रदान करने के सभी प्रबंध कर लिए थे। यथा समय संत शिरोमणी श्री चरण दास जी यज्ञ बेला पर पधारे। सभी अन्य शिष्यों के साथ मंत्रोचारण के साथ सहजो को तब गुरुदेव ने गायत्री मन्त्र से दीक्षा दी और उनका दीक्षित नाम हुआ, 'संत सहजो बाई'।

दीक्षा समारोह के अगले दिन ही माता अनूपी देवी वापस घर लौट गईं। संत दया बाई एवं संत सहजो बाई दोनों ने ही उन्हें भाव भीनी विदाई दी और प्रार्थना की कि यथा संभव वह स्वयं सहजो के पिता श्री हरि प्रसाद जी के साथ आश्रम आती रहें। स्वयं ब्रह्मचारी छीतरमल जी उन्हें घर तक छोड़ने परीक्षितपुर गए।

संत शिरोमणी श्री चरण दास जी से दीक्षित संत सहजो बाई संत दया बाई की अति प्रिय छोटी बहन बन गईं। दोनों बहनों का निवास एक ही स्थान संत दया बाई के कक्ष में ही रहा। संत सहजो बाई उन्हें दीदी माँ से सम्बोधित करती थीं। संत दया बाई का जन्म सन १६९३ में हुआ था, अतः वह संत शिरोमणी श्री चरण दास जी से आयु में लगभग १३ वर्ष और संत सहजो बाई से लगभग ३२ वर्ष बड़ी थीं। संत दया बाई के वात्सल्य ने सहजो बाई को अपने घर की स्मृति पूर्णतः ही भुला दी। यदा कदा श्री हरि प्रसाद जी एवं श्रीमती अनूपी देवी जी संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के आश्रम आते रहते थे। अपनी पुत्री सहजो के चेहरे पर प्रसन्नता का भाव देख उन्हें विशेष सुख की अनुभूति होती थी।

शनैः शनैः संत दया बाई एवं गुरुदेव संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के सानिंध्य से संत सहजो बाई के ज्ञान में नित्य प्रति वृद्धि होती रही। उन दिनों संत दया बाई 'दया बोध' काव्य ग्रन्थ की रचना कर रहीं थीं। 'दया बोध' ग्रन्थ गुरु संत शिरोमणी श्री चरण दास जी एवं भगवान् श्री कृष्ण को समर्पित एक अति भक्ति पूर्ण ग्रन्थ है।

जैसे ही संत दया बाई किसी पद की रचना करतीं, तुरंत सहजो बाई को उसे सर्व प्रथम सुनातीं। यद्यपि सहजो बाई स्वयं भगवान् कृष्ण की अनन्य भक्त थीं लेकिन कभी कभी उन्हें ऐसा लगता कि दीदी माँ दया बाई जैसा भगवान् कृष्ण के प्रति

प्रेम पाने के लिए संभवतः उन्हें दूसरा जन्म लेना पड़ेगा। वह दीदी माँ संत दया बाई को नतमस्तक हो जातीं। उनका हृदय उनके चरण छूने को करता, लेकिन संत दया बाई उन्हें अपने चरण छूने ही नहीं देती थीं। एक दिवस यह अपनी व्यथा संत सहजो बाई ने दीदी माँ संत दया बाई को बताई ही दी। दीदी माँ अत्यंत प्रेम से बोलीं, 'बहन सहजो, मैं गुरुदेव द्वारा दी दिव्य दृष्टि से देख पा रही हूँ कि तुम कृष्ण की भी आराध्य राधा की अति प्रिय सहेली हो। कृष्ण और राधा दोनों ही मेरे आराध्य हैं। अपने आराध्य की अति प्रिय सहेली से चरण छुलवाने का पाप मैं अपने सर पर नहीं ले सकती।'

दीदी माँ दया बाई आगे बोलीं, 'सहजो, आज मैं तुम्हें तुम्हारे पूर्वजन्म की कथा सुनाती हूँ। द्वापर युग में जब भगवान कृष्ण ने इस पृथ्वी पर अवतार लिया और वह ब्रज में लीला कर रहे थे, तब तुमने माँ राधा की सखी ललिता के रूप में जन्म लिया था। ललिता रूप में तुम्हारा प्राकट्य राधा रानी के अंग से ही हुआ था। जब राधा कृष्ण में लीला स्वरुप कुछ अनबन हो जाती थी तो प्रायः तुम भगवान कृष्ण का पक्ष लेती थीं। राधा जी की आलोचना करती थीं यद्यपि तुम्हारी दृष्टि में राधा कृष्ण एक ही थे। तुम्हारे हृदय में कोई ईर्ष्या नहीं थी। राधा कृष्ण को संग देख कर ही तुम्हें सुख मिलता था और उनकी अनबन देखकर दुःख। तुम एक त्यागमयी गोपी थीं। जब रासलीला शुरू होती तो तुम निकुंज के द्वार पर खड़ा होकर पहरा देती थीं ताकि कोई अन्य पुरुष का प्रवेश न हो सके। रास लीला में भगवान् कृष्ण के अतिरिक्त अन्य पुरूषों का प्रवेश निषेध था। एक बार स्वयं भगवान शिव प्रभु की रास लीला देखने आए। तुमने उनको भी रास लीला में प्रवेश करने से रोक दिया था। तब भगवान शिव ने तुमसे कहा था, 'हे ललिता, कृष्ण हमारे आराध्य हैं। उनके दर्शन किए बिना हमारे हृदय को शान्ति नहीं मिलती। कोई तो उपाय होगा कि तुम हमें हमारे प्रियतम के दर्शन करा सको।' तब ललिता जी ने कहा, 'हे भोलेनाथ, आप भली भांति जानते हैं कि रास में कृष्ण के अतिरिक्त कोई और पुरूष प्रवेश नहीं कर सकता। हाँ, अगर आपका प्रभु के दर्शन करना आवश्यक है तो आपको गोपी का श्रृंगार करना होगा।' भगवान् शिव शंकर ने तुरंत अनुमति दे दी। तब तुमने भोलेनाथ का श्रृंगार किया। उन्हें चोली पहनाई, कानों में कर्ण फूल डाले, घूँघट डाला, इत्यादि। तब भोले नाथ का रास लीला में प्रवेश हुआ और उन्होंने पूर्ण रूप से अपने आराध्य भगवान् कृष्ण के दर्शन किए।

जब यह अन्य देवताओं को पता चला तो वह भी आप के पास ऐसी ही प्रार्थना ले कर आए। आपने देवताओं की नहीं सुनी। देवताओं ने तब क्रोध कर तुम्हें कलियुग में दो बार पृथ्वी पर मनुष्य रूप में अवतार लेने का श्राप दे दिया। पहला अवतार तुमने स्वामी हरिदास जी के रूप में लिया। उस अवतार में तुमने अपनी संगीत साधना से भगवान के विग्रह रूप को प्रकट किया। आपने तानसेन एवं बैजू बावरा जैसे शिष्यों को शिक्षित किया। अपनी संगीत साधना से राधा कृष्ण को प्रगट कर सभी को उनके दर्शन कराए। अब दूसरा अवतार सहजो बाई के रूप में लिया है। इस अवतार में गुरुदेव संत शिरोमणी श्री चरण दास जी की कृपा से तुम कृष्णमय हो कर समाधि होने पर साकेत धाम चली जाओगी।'

यह कथा सुनकर दीदी माँ के वात्सल्य पर उस दिन सहजो बाई बहुत रोई थीं। अपना सर दीदी माँ के कंधा पर रख सुबक सुबक कर कह रहीं थीं, 'दीदी माँ, मुझे छोड़कर आप कभी कहीं नहीं जाना।'

दीदी माँ बोलीं, 'सहजो बहन, जो आया है, उसे जाना तो है ही। बस अपने कर्तव्य से कभी च्युत ना हों, यही हमारी गुरुदेव और ईश्वर से कामना होनी चाहिए। स्मरण रहे सहजो कि साधु संतों की सेवा ही स्वयं में भगवान की सेवा है। संसार रूपी सागर को पार करने के लिए यदि हरिनाम नाव की तरह है तो साधु उसका खेने वाला है। इसलिए सत्संग और साधु-सेवा सदैव करते रहनी चाहिए। उनके मुख से साधु संत की सेवा भाव का एक पद निकल पड़ा।

साध साध सब कोउ कहै, दुरलभ साधू सेव ।
जब संगति ह्वै साधकी, तब पावै सब भेव ॥
साध रूप हरि आप हैं, पावन परम पुरान ।
मेटैं दुविधा जीव की, सब का करैं कल्यान ॥
कोटि जक्ष ब्रत नेम तिथि, साध संग में होय ।
विपम ब्याधि सब मिटत है, सांति रूप सुख जोय॥
साधू बिरला जक्त में, हष सोक करि हीन ।
कह न सुनन कूँ बहुत हैं, जन-जन आगे दीन ॥

कलि केवल संसार में और न कोउ उपाय।
साध-संग हरि नाम बिनु मन की तपन न जाय॥
साध-संग जग में बड़ो, जो करि जानै कोय।
आधो छिन सतसंग को, कलमख डारे खोय॥

दीदी माँ दया बाई का स्वर अत्यंत सुरीला था। इस पद के भक्ति भाव समाहित गायन से सहजो बाई पूर्णतः अचेतन भाव में चली गईं। उनके नैनों से अश्रु बहने लगे। दोनों गुरु बहनों ने एक दूसरे को आलिंगन में बाँध लिया।

इसी प्रकार समय बीतता चला जा रहा था। गुरुदेव संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के साथ दीदी माँ दया बाई सहजो बाई को वेद, वेदान्तों का ज्ञान तो देतीं ही थीं, परन्तु उन शिक्षाओं में गुरु-भक्ति का विशेष स्थान होता था। सहजो बाई के हृदय में गुरु-भक्ति का बीज इस प्रकार जम गया कि उन्होंने एक अत्यंत सुन्दर रचना कर स्वयं दीदी माँ दया बाई को भी चौंका दिया।

राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ, गुरु के सम हरि को ना निहारूं।
राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ, गुरु के सम हरि को ना निहारूं।।
हरि ने जन्म दियो जग माहीँ, गुरु ने आवागमन छुड़ाईं।
राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ, गुरु के सम हरि को ना निहारूं।।
हरि ने पाँच चोर दिए साथा, गुरु ने लई छुड़ाय अनाथा।
राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ, गुरु के सम हरि को ना निहारूं।।
हरि ने कुटुम्ब जाल में घेरी, गुरु ने काटी ममता बेड़ी।
राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ, गुरु के सम हरि को ना निहारूं।।
हरि ने रोग भोग उरझायू, गुरु जोगी कर सबई छुड़ायू।
राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ, गुरु के सम हरि को ना निहारूं।।
हरि ने कर्म भर्म भर्मायू, गुरु ने आतम रूप दिखायू।
राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ, गुरु के सम हरि को ना निहारूं।।
हरि ने मोसूँ आप छिपायो, गुरु दीपक दे ताहि दिखायो।
राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ, गुरु के सम हरि को ना निहारूं।।

फिर हरि बँध-मुक्ति गति लाए, गुरु ने सब ही भर्म मिटाए ।
राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ, गुरु के सम हरि को ना निहारूं ।।
चरणदास पर तन मन वारूं, गुरु ना तजू हरि को तज डारूँ ।
राम तजूँ पै गुरु ना विसारूँ, गुरु के सम हरि को ना निहारूं ।।

इस पद में सहजो बाई ने गुरुदेव के प्रति विनम्र एवं आत्मीय भाव में अपने मन के भाव उजागर कर दिए। सहजो बाई ने सार-दर-सार सत्य को प्रकट कर दिया।

इस पद के द्वारा सहजो बाई ईश्वर को भी सन्देश देती हैं, गुरु के सम हरि को न निहारूं, अर्थात जिस मन से, भाव से, आदर से, समर्पण से, श्रद्धा-आस्था से मैं अपने गुरु को देखती हूं, उससे हे हरि मैं तुम्हें भी नहीं देखती। गुरु के दर्शन मात्र से ही मन प्रफुल्लित हो जाता है, मैंने इस भाव को जान किया है। गुरु दर्शन से हृदय को ऐसी शान्ति मिलाती हैं जैसे कोई बहुत बड़ा अनमोल कोष पा लिया हो। सहजो बाई आगे कहती हैं, 'हरि ने जन्म दिया जग मांहि, गुरु ने आवागमन छुड़ाई।' हम भू जन चौरासी लाख योनियों के चक्कर काटते रहते हैं, जन्म,,मृत्यु, फिर जन्म। यह क्रम तो समाप्त ही नहीं होता। परन्तु गुरु ने ऐसी सीख सिखाई, ऐसी विधि बताई कि आवागमन की बात ही समाप्त कर दी।

सहजो बाई आगे कहती हैं कि हरि ने कुटुम्ब जाल में फंसा कर माया मोह में डाल दिया। परन्तु 'गुरु ने काटी ममता बेड़ी'। इस संसार में जिस का आप से स्वार्थ पूरा हो, वह तो प्रसन्न और जिस के मन अनुसार आपने नहीं किया, बस क्रोधित। गुरु ने इस मोह ममता की डोरी ही काट दी। सारा झंझट ही समाप्त कर दिया। यद्यपि संभवतः यह सुलभ तो नहीं है, पर गुरु का आदेश मान लो, सच्चाई को जान लो, गुरु की मान लो, तो कल्याण हो जायेगा। गुरुदेव कहते हैं, परिवार से प्रेम करो, पर मोह में मत फंसों। यही तो रहस्य है जीवन में प्रसन्नता एवं आनन्द अनुभव करने का।

सहजो बाई आगे सन्देश देती हैं कि 'हरि ने रोग-भोग में उलझाया। गुरु ने जोगी बन कर यह सब छुड़ाया।' भगवान ने तो शरीर दिया। शरीर तो रोगों का घर है। भोगों में लालायित क्षणिक सुख की अनुभूति शरीर को रोगी बना देती है। मनुष्य

काम, क्रोध, मोह, लोभ में कितने अनुचित कार्य करता है, और संकट अपने लिये स्वयं ले लेता। गुरु शिष्य के इन भोगों के प्रति उदासीन बना कर उसे मुक्त कर देता है।

सहजो बाई कहती हैं, 'हरि सर्वशक्तिमान हैं। सर्व नियन्ता हैं। सब कुछ उन्हीं के बस में है। सब कुछ करने वाले वही हैं, किन्तु दृष्टिगोचर नहीं होते। स्वयं को छुपा कर रखा हुआ है। और गुरु, जिन्होंने इतने उपकार किये, उन के साक्षात दर्शन करना सुलभ। उनके देवरूपी स्वरूप को देख कर धन्य हो जाओ, बात कर लो, आशीष ले लो, गुरु की कृपा पा लो, साक्षात दर्शन करो।

गुरु की कृपाओं से धन्य सहजो बाई अपने सद्गुरु चरण दास पर तन-मन वार कर कहती हैं कि मेरा निर्णय ठीक ही कि 'गुरु न तजूँ, हरि तज दूँ।'

इस पद से प्रसन्न हो दीदी माँ दया बाई ने सहजो बाई का आलिंगन कर लिया। उनके स्वयं के मुख से भी एक रचना निकल पड़ी।

गुरु बिन ज्ञान ध्यान नहिं होवै । गुरु बिनु चौरासी मन जावै ॥
गुरु बिन राम भक्ति नहिं जागै । गुरु बिन असुभ कर्म नहिं त्यागै ॥
गुरु ही दीन दयाल गोसाईं। गुरु सरनै जो कोइ जाई ॥
पलटैं करैं काग सूँ हंसा। मन को मेटत हैं सब संसा ॥
गुरु हैं सागर कृपा निधाना। गुरु हैं ब्रह्म रूप भगवाना ॥
हानि लाभ दोउ सम करि जानैं। हदै ग्रन्थ नीकी विधि मानैं ॥
दै उपदेश करैं भ्रम नासा। दया देत सुख सागर बासा ॥
गुरु को अहिनिस ध्यान जो करिये। बिधिवत सेवा में अनुसरिये ॥
तन मन सूं अज्ञा में रहिये। गुरु आज्ञा बिन कछू न करिये ॥

इसी प्रकार पता ही नहीं चला किस प्रकार दस वर्ष बीत गए। सन १७४६ में दीदी माँ दया बाई गंभीर रूप से बीमार हो गईं। उनका भू जन्म उद्धेश तो संत शिरोमणी श्री चरण दास जी के साथ साथ सहजो बाई को भगवद-प्राप्ति कराना था, जो अब पूर्ण हो चुका था। संत शिरोमणी एवं सहजो बाई की उपस्थिति में,

सहजो को गुरुदेव को समर्पित कर, दीदी माँ दया बाई ने इस पार्थिव शरीर को छोड़ दिया। सहजो बाई ने अपनी माँ को खो दिया था। हृदय ने तो बहुत चाहा कि वह दहाड़ मार कर रोए परन्तु गुरुदेव के श्रीमद्भगवद्गीता ज्ञान ने उन्हें यह करने से रोका।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते |
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि || २, २५ ||

गुरुदेव संत शिरोमणी श्री चरण दास जी ने सहजो बाई को ज्ञान दिया, 'हे पुत्री, आत्मा को अव्यक्त, अकल्पनीय तथा अपरिवर्तनीय कहा जाता है। यह जानकार तुम्हें शरीर के लिए शोक नहीं करना चाहिए। दया बाई के जीवन उद्देश्य की पूर्ती हो गई, और वह प्रभु के समीप साकेत धाम चलीं गईं। उनका अब पुनर्जन्म नहीं होगा। वह साकेत धाम में ही अब तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगी। जब तक प्रभु ने तुम्हें स्वासें दीं हैं, तब तक दया बाई के कार्यों को आगे बढ़ाओ।'

सहजो बाई ने तब अपने आप को सम्हाला। सर्व प्रथम उन्होंने दीदी माँ दया बाई के समस्त पदों को एकत्रित किया और उन्हें 'दया बोध' ग्रन्थ नाम से प्रकाशित किया। दीदी माँ दया बाई के दिखाए मार्ग पर वह चलने लगीं। गुरुदेव की सेवा का पूर्ण भार अपने ऊपर ले लिया। अब वही गुरुदेव का भोजन अपने हाथों से स्वयं बना उन्हें खिलातीं। गुरुदेव को तो समाज कल्याण कार्यों से अवकास ही नहीं मिलता था। उन्हें न अपने तन की चिंता थी, न अपने स्वास्थ्य की। सहजो बाई ने यह सुनिश्चित किया कि गुरुदेव को समय पर इस तन को जीवित रखने के लिए भोजन मिलता रहे। साथ साथ ही गुरुदेव के समाज कल्याण कार्यों में हाथ बटाने लगीं। सहजो बाई का कवि हृदय उन्हें काव्य लिखने के लिए भी बाध्य करता कहा। सहजो बाई ने प्रमुख भक्ति ग्रन्थ 'सहज प्रकाश' की तब रचना की।

सहज प्रकाश - एक झलक

संतबानी पुस्तक माला इलाहाबाद द्वारा 'सहज प्रकाश' का सन १९७७ में १२वां संस्करण 'सहजो बाई की बानी' नाम से प्रकाशित किया गया। 'सहजोबाई की बानी' ग्रन्थ को २१ अध्यायों में विभाजित किया। माता सहजोबाई द्वारा रचित 'सहज प्रकाश' में लिए गए प्रत्येक विषय का हम यहां संक्षिप्त में चर्चा करेंगे।

'सहज प्रकाश' मधुर ब्रज भाषा में रचित एक अत्यंत मनमोहक काव्य है। इस काव्य में भक्ति से लेकर मनुष्य जीवन कर्म की सभी शिक्षाएं निहित हैं।

जैसा उपरोक्त इस पुस्तिका में चर्चित है, सहजो बाई गुरुदेव को ईश्वर से भी अधिक उच्च स्थान देती थीं। वह संत कबीर जी के इस सिद्धांत को शत प्रतिशत अनुसरण करती थीं।

गुरू गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पांय ।
बलिहारी गुरू अपने गोविन्द दियो बताय ।।

'सहज प्रकाश' पुस्तक में माँ सहजो बाई का गुरु के प्रति समर्पण पूर्ण रूप से देखा जैसा सकता है। माँ इस ग्रन्थ का प्रारम्भ गुरु वन्दना से करती हैं।

नमो नमो गुरु देवन देवा । नमो नमो गुरु अगम अभेवा ।।
नमो नमो निरलम्ब निरासा । नमो नमो परमातम बासा ।।
नमो नमो त्रिभुवन के स्वामी । नमो नमो गुरु अंतरजामी ।।
नमो नमो गुरु पातक हरता । नमो नमो पारायण करता ।।
गति मति छाके आनंद रूपा। नमो नमो गुरु ब्रह्म स्वरूपा ।।
नमो नमो मम प्रान पियारे । नमो नमो तिर्गुन तें नियारे ।।
भक्ति ज्ञान जोग के राजा । सहजो के पुरबो सब काजा ।।
जो कोई सरन तुम्हारी आयो । तुरीयातीत बिज्ञान बसायो ।।

भगवान् महर्षि सुकदेव सहजो बाई के गुरु संत चरण दास जी के गुरुदेव थे। अतः सहजो बाई उन्हें दादा रूप में सम्बोद्धित कर, उन्हें और गुरुदेव संत शिरोमणी चरण दासजी दोनों को हीप्रणाम करती हैं।

कर जोरूँ परनाम करि, धरूँ चरण पर शीश ।
दादा गुरु सुकदेव जी, पूरन बिस्वा बीस ।।
परमहंस तारन तरन, गुरु देवन गुरु देव ।
अनुभै बानो दीजिये, सहजो पावे भेव ।।

माँ सहजो बाई कहती हैं कि गुरु चार प्रकार के होते हैं। लेकिन मेरे गुरु चरण दास जी तो सर्व समर्थ हैं, चारों गुरु प्रकार उनमें समाहित हैं।

गुरु हैं चार प्रकार के, अपने अपने अंग ।
गुरु पारस दीपक गुरु, मलयागिरि गुरु भृंग ।।
चरणदास समरथ गुरु, सर्ब अंग तेहि मांहि ।
जैसे कूँ तैसा मिले, रीता छाँड़ें नाहिं ।।

हरि की कृपा पाना कठिन कार्य है, वह हो भी सकती है और नहीं भी। परन्तु गुरु तो सदैव कृपा कर बुद्धि को निर्मल रखते हैं।

हरि कृपा जो होए तो, नाहीं होए तो नाहिं ।
पै गुरु कृपा दया बिनु, सकल बुद्धि बहि जांहि ।।

इस भाव सागर से पार उतारने के लिए गुरु के चरण ही तीर्थ हैं। जिन्होंने वह पकड़ लिए, उनका ही कल्याण हुआ।

सब तीरथ गुरु के चरन, नित ही परबी होए ।
सहजो चरनोदक लिए, पार रहित नहीं कोय ।।

जो गुरु की आज्ञा सिरोधार्य कर कार्य करता है, उसी शिष्य का कल्याण होता है।

गुरु अज्ञा दृढ करि गहै, गुरु मत सहजो चाल ।
रोम रोम गुरु को रटै, सो सिष होए निहाल ।।

गुरु की अवज्ञा करने वाला एवं उनमें दोष देखने वाला शिष्य कभी निर्वाण नहीं पा सकता।

गुरु अज्ञा मानें नहीं, गुरहि लगावे दोष ।
गुरु निंदक जग में दुःखी, मुए न पावे मोष ।।

गुरु की महिमा वर्णन करती हुई माँ सहजो बाई कहती हैं।

परमेश्वर सूं गुरु बड़े, गावत बेद पुरान ।
सहजो हरि के मुक्ति है, गुरु के घर भगवान् ।।
दीपक ले गुरु ज्ञान को, जगत अँधेरे मांहि ।
काम क्रोध मद मोह में, सहजो उरझो नाहिं ।।
सहजो गुरु परताप सूं, होए समुन्दर पार ।
बेद अर्थ गूंगा कहै, बानी कित इक बार ।।
निस्चै यह मन डूबता, मोह लोभ की धार ।
चरणदास सतगुरु मिले, सहजो लई उबार ।।
चिउंटी जहां न चढ़ सके, सरसों न ठहराय ।
सहजो कूँ वा देस में, सतगुरु दई बसाय ।।
सहजो गुरु ऐसा मिला, जैसे धोबी होय ।
दै दै साबुन ज्ञान का, मलमल डारे धोय ।।

माँ सहजो ऐसे धूर्त गुरुओं से बचने का सुझाव देती हैं जो आपके धन के लालायित हैं।

ऐसे गुरु तो बहुत हैं, धूत धूत धन लेंहिं ।
सहजो सतगुरु जो मिलें, मुक्ति धाम फल देंहिं ।।

गुरु एवं ब्रह्म की प्राप्ति के लिए लगन आवश्यक है। लगन एवं सत्संग, इन दोनों का हृदय में संगम सुख शान्ति और अंततः मोक्ष प्राप्त देता है।

साध मिले पूरी भई, जनम जनम की आस ।
सहजो पायो भाव तें, सतसंग में बास ।।
साध मिले हरि ही मिलें, मेरे मन परतोत ।
सहजो सूरज धूप ज्यों, जल पाले की रीत ।।
साध संग में चांदना, सकल अन्धेरा और ।
सहजो दुर्लभ पाइए, सतसंगत में ठौर ।।
जो आवे सतसंग में, जाति बरन कुल खोय ।
सहजो मैल कुचैल जल, मिले सु गंगा होय ।।

माता सहजो बाई ने वृद्ध अवस्था आने पर भी अपने आप को ईश्वर को समर्पित न करने पर प्राणीओं को डांट लगाई है। एक ईश्वर ही तुम्हें जीवन में सुख एवं शान्ति पूर्वक मरण प्रदान कर सकता है।

सहजो धोले आइया, झड़ने लगे दाँत ।
तन गुंझल पड़ने लगीं, सूखन लागी आंत ।।
ऐसी बरस ऊपर लगी, बिरध अवस्था होए ।
आगे की थिरता नहीं, पिछली गई सब खोय ।।
तीन अवस्था बीत कर, चौथी आई मंद ।
वृद्ध अवस्था सिर चढ़ी, ताहू न चेता अंध ।।
चार अवस्था खो दईं, लियो न हरि को नाम ।
तन छूटे जम कूटि है, पापी जम के ग्राम ।।
आया जगत में क्या किया, तन पाला कै पेट ।
सहजो दिन धंधे गया, रैन गई सुख लेट ।।

माँ सहजो ने मृत्यु दशा का बड़े ही अच्छी प्रकार से वर्णन किया है। अगर प्राणी समय से नहीं चेता और प्रभु की शरण नहीं गया, तो इस चौरासी योनी के जन्म-मृत्यु के जाल में फंसा रह जाएगा।

जम की सूरत देखकर, सुधि बुधि गई नसाय ।
सहजो जो संकट बन्यो, मुख सूँ काहू ना जाय ।।
सहजो मिरतू के समय, पीड़ा होय अपार ।
बीछू एक हज़ार ज्यों, डंक लगाई इकसार ।।
पकरि बाँध जम ले चलै, धर्मराय के पास ।
कई बार आगे गए, छप्पन जहां तरास ।।
कई भांति के दंड हैं, सहजो नाना त्रास ।
नरक कुंड दुःख भुगति करि, फिर चौरासी बास ।।

आत्म-हत्या अथवा किसी भी प्रकार की अकाल मृत्यु को माँ सहजो ने बड़ा ही दुःखदायी दर्शाया है। ईश्वर के विमुख रहने से ही प्राणी इस प्रकार की मृत्यु को प्राप्त कर असहनीय दुःख झेलता है।

काल मौत जो आगे गाई। अकाल मृत्यु कहै सहजो बाई ।।
सस्तर मौत मरे जो कोई। यह भी मौत अकालहिं होइ ।।
बिगड़े रोग पत्थ नहीं कीन्हो। यह भी मौत अकालहिं चीन्हो ।।
कोई भांति जो बिष खा मरै। और जीवित पावक में जरै ।।
जल में डूब जाए जो कैसे। लागे प्रेत मरै कोई ऐसे ।।
सांप डसे छूटे जो काया। महलापतनी तें दबि जाया ।।
कोई ठग फांसी दे मारा। जंगल पसु तोड़ जो डारा ।।
यह सब मृत्यु अकाल दिखाई। मुए सूँ योनि पिसाचर पाई ।।
प्रेत योनि कूँ पाए के, दुःखी भये अज्ञान ।
आप दुःखी दुःख देत हैं, उठ गई सब पहिचान ।।

माँ सहजो बाई हरि के नाम भजन को ही मुक्ति का मार्ग बताती हैं। शास्त्रों में कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग इत्यादि की शिक्षा दी है, परन्तु माँ सहजो के अनुसार केवल और केवल हरि भक्ति ही प्राणी को चौरासी योनि के जन्म-मृत्यु के जाल से छुड़ा सकती है।

लाख चौरासी यह कही, फेर फेर भुगतंत।
जनम मरन छूटे नहीं, बिना सरन भगवंत।।
जज्ञ दान तीरथ करै, पूजा भांति अनेक।
मुक्ति ना पावे सहजिया, बिना भक्ति हरि एक।।
इन्दर की पदवी मिलै, और ब्रह्मा की आब।
आगे तो भी मरन है, सहजो सकल बहाव।।
राम नाम ले सहजिया, दीजै सर्ब अकोर।
तीन लोक के राज लों, अंत जाहुगे छोर।।
बिना भक्ति थोथे सभी, जोग जज्ञ आचार।
राम नाम हिरदे धरो, सहजो यही विचार।।
चौरासी के दुःख छटें, छप्पन नर्क तरास।
राम नाम ले सहजिया, जमपुर मिले ना बास।।
काम क्रोध लोभ मोह मद, तजि भेज हरि को नाम।
निस्चै सहजो मुक्ति भवे, लहै अमरपुर धाम।।

माँ सहजो ईश्वर प्रेम को अत्यंत महत्व देतीं हैं। ईश्वर प्रेम, जन सेवा भाव एवं ईश्वर भक्ति, यही प्रभु से मिलन एवं जन्म-मृत्यु से छुटकारा दिला सकते हैं। मंत्रोचारण से ज्ञान तो मिल सकता है, परन्तु प्रभु नहीं, ऐसा माँ सहजो मानती हैं।

प्रेम दिवाने जो भए, मन भयो चकनाचूर।
छके रहे घूमत रहें, सहजो देख हज़ूर।।
प्रेम दिवाने जो भए, पलट गयो सब रूप।
सहजो दृष्टि ना आवै, कहा रंक का भूप।।
प्रेम दिवाने जो भए, जाति बरन गई छूट।
सहजो जग बौरा कहै, लोग गए सब फूट।।
प्रेम लटक दुर्लभ महा, पावे गुरु के ध्यान।
अजपा सुमिरन कहत हूँ, उपजे केवल ज्ञान।।

माँ सहजो ने प्रभु के निर्गुण और सगुन दोनों ही रूपों की अति उत्तम व्याख्या की है। सगुन प्रभु की उपासक माँ सहजो कहते हैं की हम भक्तों के तारने के लिए

निर्गुम परभु ने सगुन का रूप धारण किया है। अतः सगुण ईश्वर को स्मरण कर इस भाव सागर से तर जाओ।

निराकार आकार सब, निर्गुण और गुनवंत ।
है नांही सूँ रहित है, सहजो यों भगवंत ।।
नाम नहीं औ नाम सब, रूप नहीं सब रूप ।
सहजो सब कुछ ब्रह्म है, हरि प्रगट हरि गूप ।।
वही आप परगट भयो, ईसुर लीला धार ।
मांहि अजुध्या और ब्रज, कौतिक किए अपार ।।
भक्त हेतु हरि आइया, पिरथी भार उतारि ।
साधन की रच्छा करी, पापी डारे मारि ।।
निर्गुन सूँ सर्गुन भए, भक्त उधारनहार ।
सहजो की दण्डौत है, ताकूँ बारम्बार ।।
गीता में श्री कृष्ण ने, वचन कहे सब खोल ।
सब जीवन में मैं बसूं, कै चर कहा अडोल ।।
मैं अखंड व्यापक सकल, सहज रहा भर पूर ।
ज्ञानी पावे निकट ही, मूरख जाने दूर ।।
जोगी पावे जोग सूँ, ज्ञानी लहै विचार ।
सहजो पावे भक्ति सूँ, जा के प्रेम आधार ।।
धन्य जसोदा नन्द धन्य, धन्य ब्रजमंडल देस ।
आदि निरंजन सहजिया, भयो ग्वाल के भेस ।।

माँ सहजो बाई कृष्ण के प्रेम में इतनी तल्लीन हैं कि वह होली उन्हीं के साथ खेलती हैं।

मैं तो खेलूं प्रभु के संग, होरी रंग भरी ।
जित देखूं तित रमि रहौ रे, सब में व्यापक है हरी ।।
सब कुछ भयो दियो सुख जिन कूँ, अद्भुत लीला है करी ।
नाना जतन किए मिलवे कूँ, प्रीतम पायो हम घरी ।।
पावत ही सब भ्रम भय भागे, आवागमन छूटी लरी ।

जीवन मुक्त भयो मन मोरो, ब्याधा सब आसा जरी ।।
अमर लोक पद फगुवा पैवे, जनम मरन बिपता दली ।
चरणदास गुरु किरपा कीन्हे, सहजो हिय आनंद हली ।।

माँ सहजो बाई ने हरि की लीला का इस पद में अति सुन्दर चित्रण किया है।

तेरी लीला अधिक सुहावनी।
देखि देखि मन हुलसत है, संतन के मन भावनी ।।
तत गुन करि ब्रह्मण्ड बनाया,अधर धरयो अचरज भयो ।
जाके मध्य यही संसारा, भांति भांति रंग रंग हयो ।।
सात दीप नौ खंड रचे हैं, स्वर्ग नरक पाताल हीं ।
इच्छा करत सबै बन आयो, होए गया तत्काल हीं ।।
माया अगम अपार तुम्हारी, बरन सके कहाँ बेद है ।
तीन गुनन तक बुध पहुंचत है, परे तुम्हारो भेद है ।।
छिन में उत्पति परलय छिन में, जो चाहो सब कुछ बनै ।
चरणदास गुरु दृष्टि देइ जब, गुनाबाद सहजो बनै ।।

इस प्रकार अनगिनत पदों की रचना कर माता सहजो बाई अमर हो गईं।

भगवान् कृष्ण दर्शन एवं समाधि

माँ सहजो बाई की गुरुभक्ति का चमत्कार तो देखिए कि स्वयं भगवान् कृष्ण ने उन्हें दर्शन दिए। एक दिन दोपहर को जब सहजो बाई गुरुदेव संत चरण दास जी के लिए भोजन बना रहीं थीं, स्वयं भगवान् कृष्ण एक युवा ब्रह्मचारी के रूप में माँ के पास प्रगट हुए।

"माँ बहुत भूख लगी है, भोजन दो न", ब्रह्मचारी के शब्द माँ को सुनाई दिए।

ब्रह्मचारी का स्वर सुन माँ बाहर आईं। दिव्य दृष्टि से पहचान लिया, ईश्वर उनके द्वार आए हैं। लेकिन यह प्रपंच क्यों? ब्रह्मचारी का रूप क्यों? मुरली बजाते हुए मेरे कन्हैया मेरे समक्ष क्यों नहीं आये? माँ ने सोचा, कोई बात नहीं। प्रभु प्रसन्न हों अथवा अप्रसन्न। मैं भी आज उनके साथ परिहास करूंगी। अप्रसन्न हो भी जाएंगे तो गुरुदेव हैं न उनको मनाने के लिए।

सहजो बाई बोलीं, 'हे ब्रह्मचारी, तुम्हें भोजन अवश्य मिलेगा। अभी गुरुदेव भोजन के लिए शीघ्र पधारने वाले हैं। ग्रीष्म काल है, और आज गर्मी भी बहुत है। भोजन करते समय तुम उनको पंखा झल शीतलता प्रदान करना। गुरुदेव के भोजन समाप्ति पर मैं तुम्हें भी भोजन दूंगी। और देखो, तुम गुरुदेव के समक्ष नहीं आ जाना, बस दूर से ही पंखा झलना।'

माँ सहजो जानती थीं कि अगर ब्रह्मचारी के रूप में भगवान् स्वयं गुरुदेव के समक्ष आ गए तो वह तुरंत उन्हें पहचान जाएंगे, और उनका खेल बिगड़ जाएगा। भक्त के प्रति भगवान् का प्रेम तो देखिए। ब्रह्मचारी के रूप में कान्हा बोले, "बस माँ, इतनी सी बात। यह तो मेरा बड़ा ही सौभाग्य होगा कि मुझे गुरुदेव की सेवा करने का अवसर मिलेगा"।

गुरुदेव यथा समय भोजन के लिए पधारे। कुटिया में एक विचित्र सुगंध का अनुभव कर सहजो से बोले, 'सहजो यह सुगंध कहाँ से आ रही है? कौन सा पुष्प लाए हो आज अर्पण के लिए जिसकी सुगंध इतनी महक रही है।"

भोली भाली सहजो क्या उत्तर दें। झूंठ भी तो नहीं बोल सकतीं गुरुदेव से। फिर गुरुदेव भी सिद्ध दिव्य दृष्टि वाले महान संत। स्वयं ही बोले, 'कन्हैया छुपने की आवश्यकता नहीं। दर्श दो।"

भगवान् प्रगट हो गए। संत जी ने और इसके पश्चात सहजो ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। भक्त और भगवान् दोनों ने प्रेम पूर्वक भोजन किया।

भोजन पश्चात भगवान् माँ से बोले, 'सहजो मैं तुम्हारी गुरुभक्ति से अत्यंत प्रसन्न हूँ, वर मांगो।"

सहजो बोलीं, 'हे प्रभु आपने मुझे गुरुदेव दे दिए। अब मेरी कोई कामना नहीं।"

भगवान् ने प्रसन्नता से उनके सर पर अपना कर रखा और बोले, ''सहजो, तुम सरस्वती का दूसरा ही रूप हो। मैं सदैव तुम्हारे साथ हूँ। इस जीवन में तुम भक्ति के साथ संत चरण दास जी द्वारा बताए मार्ग पर चलते हुए जन सेवा करो। तुम्हारी समाधि समय मैं स्वयं तुम्हें विमान में साकेत धाम के लिए लेने आऊँगा।'

प्रभु ने अपना वचन निभाया। सन १७८२ में गुरु संत शिरोमणी श्री चरण दास की समाधि के पश्चात सहजो बाई वृंदावन आ गयीं और वहीं उन्होंने अपने आश्रम की स्थापना की। भगवान् कृष्ण की भक्ति में लीन २४ जनवरी सन् १८०५ को भक्तिमती सहजो बाई ने वृंदावन में देहत्याग किया। कहते हैं कि उस समय एक तीव्र प्रकाश का अनुभव हुआ और विमान का स्वर लोगों को सुनाई दिया। माँ सहजो बाई उसी विमान में प्रभु के साथ बैठकर साकेत धाम चली गईं।

डॉ यतेंद्र शर्मा - सन १९५३ में एक हिन्दू सनातन परिवार में जन्मे डॉ यतेंद्र शर्मा की रूचि बचपन से ही सनातन धर्म ग्रंथों का पठन पाठन एवं श्रवण में रही है। संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा उन्होंने अपने पितामह श्री भगवान् दास जी एवं नरवर संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य श्री सालिग्राम अग्निहोत्री जी से प्राप्त की और पांच वर्ष की आयु में महर्षि पाणिनि रचित संस्कृत व्याकरण कौमुदी को कंठस्थ किया। उन्होंने तकनीकी विश्वविद्यालय ग्राज़ ऑस्ट्रिया से रसायन तकनीकी में पी.अच्.डी की उपाधी विशिष्टता के साथ प्राप्त की। सन १९८९ से डॉ यतेंद्र शर्मा अपने परिवार सहित पर्थ ऑस्ट्रेलिया में निवास कर रहें हैं, तथा पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया के खनन उद्योग में कार्य रत हैं।

सन २०१६ में उन्होंने अपने कुछ धार्मिक मित्रों के साथ एक धार्मिक संस्था 'श्री राम कथा संस्थान पर्थ' की स्थापना की। यह संस्था श्री भगवान् स्वामी रामानंद जी महाराज (१४वीं- १५वीं शताब्दी) की शिक्षाओं से प्रभावित है तथा समय समय पर गोस्वामी तुलसी दास जी रचित श्री राम चरित मानस एवं अन्य धार्मिक कथाओं का प्रवचन, सनातन धर्म के महान संतों, ऋषियों, माताओं का चरित्र वर्णन एवं धार्मिक कथाओं के संकलन में अपना योगदान करने का प्रयास करती है।

श्री राम कथा संस्थान पर्थ

कार्यालय: ३५ मायना रिट्रीट, हिलरीज, पर्थ, ऑस्ट्रेलिया – ६०२५
वेबसाइट: https://shriramkatha.org
ई-मेल: srkperth@outlook.com
टेलीफोन: +६१ (०८) ९४०१ १५४३